मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 36 ● वर्ष 4 ● अंक 9 ● नवम्बर 2014 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

भारत को 'मैन्युफ़ैक्चरिंग हब' बनाने के मोदी के सपने के मायने 9

इबोला – महामारी या महाक़त्ल? 11

काले धन की कालिमा और सफ़ेद धन की सफ़ेदी एक छलावा है 16

मेहनतकश साथियो! धार्मिक जुनून की धूल उड़ाकर हक़ों पर डाका मत डालने दो!

ज़िन्दगी को बदलने की असली लड़ाई में लगने की पहली शर्त है सभी मेहनतकशों की अटूट एकता !

सम्पादक मण्डल

कहते हैं कि रावण अपने दस मुँहों से बोलता था। लेकिन रावण हर मुँह से एक ही बात बोलता था। मगर मोदी सरकार और उसके पीछे खड़े संघ परिवार के अनेक मुँह हैं और सब अलग-अलग बातें एक साथ बोलते रहते हैं। लोगों का ध्यान बँटाने और उन्हें अपने असली इरादों के बारे में पूरी तरह भ्रम में डालने का यह उनका पुराना आज़मूदा नुस्ख़ा है। चुनाव के पहले से ही यह खेल जारी था और सत्ता में आने के बाद और भी चतुराई के साथ खेला जा रहा है।

एक ओर नरेन्द्र मोदी 15 अगस्त को मेल-मिलाप की और झगड़े मिटाने की बातें करते हैं और अपनेआप को उदारवादी और सबको साथ लेकर चलने वाला दिखाने की हरचन्द कोशिश कर रहे हैं, दूसरी ओर उन्हीं की सरकार और पार्टी के लोग साम्प्रदायिक विष फैलाने और धार्मिक आधार पर ध्रुवीकरण के तरह-तरह के हथकण्डों में लगे हुए हैं। इतिहास, शिक्षा और संस्कृति के पूरे ढाँचे के भगवाकरण करने के क़दमों से लेकर ज़मीनी स्तर पर घनघोर साम्प्रदायिक और झूठे प्रचार में सरकार और पार्टी के अलग-अलग लोग लगे हुए हैं। मोदी देश-दुनिया में घूम-घूमकर लगातार "विकास" की बातें कर रहे हैं। वे इतना ज़्यादा 'विकास-विकास' कर रहे हैं कि बहुत से लोगों ने उनका नाम 'विकास के पापा' रख दिया है! वे लगातार देश की जनता को विश्वास दिलाने की कोशिश कर रहे हैं कि एक बार 'विकास' की आँधी, या 'विकास' की गंगा (जो चाहे समझ लीजिए) चली नहीं कि देश की सारी समस्याएँ छूमन्तर की तरह उड़ जायेंगी और सब लोग वापस रामराज्य के सुखभरे दिनों में पहुँच जायेंगे। लेकिन दूसरी ओर, देशभर में सुनियोजित ढंग से साम्प्रदायिक तनाव भड़काने और नियंत्रित दंगे-फसाद कराने की रणनीति भी जारी है, जिसके पुराने माहिर भाजपा के नये अध्यक्ष अमित शाह हैं।

वजह साफ है। मोदी सरकार, भाजपा और संघ परिवार, सब अच्छी तरह जानते हैं कि मोदी जिस 'विकास' को लाने की बातें कर रहे हैं वह अगर आ भी गया तो मुट्ठीभर पूँजीपतियों, व्यापारियों, धनी फार्मरों और खाते-पीते मध्यवर्ग के लिए ही होगा। देश की 80-85 प्रतिशत आम मेहनतकश आबादी के लिए वह 'विनाश' ही होगा। मोदी चाहे जितनी जुमलेबाज़ियाँ कर लें, सच्चाई यही है कि उनकी आर्थिक नीतियाँ उदारीकरण-निजीकरण की उन नीतियों से बिल्कुल अलग नहीं हैं जिनके विनाशकारी नतीजों का कहर देश का अवाम पिछले 24-25 वर्षों से झेल रहा है। फर्क बस यह है कि मोदी उन नीतियों को और ज़्यादा भारी बुलडोज़र के साथ, और भी कड़क डण्डे के ज़ोर पर लागू करने का देशी-विदेशी पूँजीपतियों को वादा कर रहे हैं। उनके पास और कोई रास्ता भी नहीं है। पूँजीवाद का संकट आज उस मुकाम पर पहुँच चुका है कि अपने घटते हुए मुनाफ़े को बचाने के लिए पूँजीपति वर्ग मेहनतकशों की हड्डी-हड्डी चूस लेना चाहता है। एक दशक से जारी विश्वव्यापी मन्दी पूँजीवादी वैद्य-हकीमों के तमाम नुस्ख़ों के बावजूद दूर होने का नाम नहीं ले रही है। भारत के विशाल बाज़ार, यहाँ के करोड़ों मेहनतकशों के सस्ते श्रम और अपार प्राकृतिक संसाधनों को लूटकर अपना संकट हल्का करने के लिए सारे पूँजीपतियों की जीभ लपलपा रही है। जैसे किसी मरणासन्न बूढ़े को कुछ दिन और जिलाने के लिए जवान इंसान का ख़ून जबरन निकालकर चढ़ाया जाये, उसी तरह ये देशी-विदेशी लुटेरे भारत (और चीन) की इंसानी और कुदरती सम्पदा को लूटकर-चूसकर अपने मुनाफ़े के कारोबार में जान फूँकना चाहते हैं।

लेकिन वे भी जानते हैं, और उनके सबसे वफ़ादार सेवक, यानी हिटलर की भारतीय औलादें भी अच्छी तरह जानती हैं कि जनता चुपचाप इसे सहन नहीं करती रहेगी। थोथे नारों और नौटंकियों से उसे कुछ दिनों तक बहलाया-फुसलाया जा सकता है। आख़िरकार उसकी आँखों से भ्रम की पट्टी खुलेगी और तब वह इनके असली इरादों को समझकर सड़कों पर उतरने में देर नहीं करेगी। इसी दिन के लिए ये पहले से तैयारी कर रहे हैं और साम्प्रदायिक तनाव की आग को सुलगाये रखना चाहते हैं ताकि वक़्त आने पर उसके शोलों को हवा दी जा सके और लोगों को एक होकर लुटेरी सत्ता से लड़ने के बजाय आपस में लड़ाया-मराया जा सके।

दूसरे, कई जगह होने वाले चुनावों में भी वोटों की फसल काटने के लिए धार्मिक ध्रुवीकरण का सहारा लिया जा रहा है। दिल्ली से लेकर बिहार और उत्तर प्रदेश तक इसे साफ देखा जा सकता है। दिल्ली में विधानसभा चुनाव की आहट होते ही जगह-जगह साम्प्रदायिक तनाव, झड़पों और दंगों का दौर शुरू हो गया है। बिहार में नीतीश कुमार के साथ भाजपा का गठबन्धन टूटने के बाद से साम्प्रदायिक झड़पों की पौने दो सौ घटनाएँ हो चुकी हैं। उत्तर प्रदेश में तो लोकसभा और फिर विधानसभा उपचुनावों के समय से ही यह ख़तरनाक खेल जारी है। देश के अलग-अलग इलाक़ों में, असम से लेकर केरल तक लगातार ऐसी घटनाएँ घट रही हैं जिनमें से केवल कुछ ही मीडिया में आती हैं।

इतने बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक माहौल केवल तभी खराब होता है जब जानबूझकर योजना के तहत इस काम को अंजाम दिया जाये। जो भी सूचनाएँ और रिपोर्टें आ रही हैं उनसे पता चलता है कि संघ, भाजपा, बजरंग दल और विश्व हिन्दू परिषद आदि से जुड़े लोग स्थानीय मनमुटाव और विवादों को भड़काने और धार्मिक रंग देने का काम कर रहे हैं। जिन विवादों को स्थानीय लोग आपस में बातचीत करके सुलझा सकते थे उन्हें जानबूझकर भावनाएँ भड़काने के लिए बढ़ाया जाता है। बड़े पैमाने पर झूठी अफवाहों का सहारा लिया जा रहा है और इसमें इंटरनेट तथा फेसबुक का भी जमकर इस्तेमाल किया जा रहा है। अब तो सभी लोग जान चुके हैं कि पिछले साल मुज़फ़्फ़रनगर के दंगों में भाजपा के नेताओं और उनसे जुड़े लोगों ने कई साल पुराना पाकिस्तान का वीडियो दिखाकर जनता को भड़काया था। हैदराबाद में तो बजरंग दल के कार्यकर्ता हिन्दू मंदिरों में गोमांस फेंकते हुए पकड़े जा चुके हैं और कर्नाटक में इसी संगठन के लोगों को पाकिस्तान का झंडा फहराते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया था। कुछ महीने पहले एक अंग्रेज़ी दैनिक अख़बार के पत्रकार से बातचीत के दौरान उत्तर प्रदेश के एक बड़े पुलिस अधिकारी ने नाम न बताने की शर्त पर कहा कि कुछ लोग चाहते हैं कि तनाव और फसाद को भड़कने दिया जाये।

शहरों और गाँवों के मध्यवर्गीय और सम्पन्न लोगों में आधार बढ़ाने के साथ आर.एस.एस. बहुत व्यवस्थित ढंग से शहरों की मज़दूर बस्तियों में पैर पसार रहा है। वे जानते हैं कि आने वाले दिनों में मज़दूर वर्ग ही उसके ख़िलाफ़ सबसे मज़बूती से खड़ा होगा। इसीलिए वे अभी से उसके बीच अपना ज़हरीला प्रचार करने में लगे हैं। किसानी पृष्ठभूमि से उजड़कर आये, निराश-बेहाल असंगठित युवा मज़दूरों और लम्पट सर्वहारा की सामाजिक परतों के बीच फासिस्ट हमेशा से भरती करने में कामयाब रहते हैं। और यही काम वे हमारे यहाँ भी कर रहे हैं।

मज़दूरों और मेहनतकशों को समझना होगा कि साम्प्रदायिक फासीवाद पूँजीपति वर्ग की सेवा करता है। साम्प्रदायिक फासीवाद की राजनीति झूठा प्रचार या दुष्प्रचार करके सबसे पहले एक नकली दुश्मन को खड़ा करती है ताकि मज़दूरो-मेहनकशों का शोषण करने वाले असली दुश्मन यानी पूँजीपति वर्ग को जनता के गुस्से से बचाया जा सके। ये लोग न सिर्फ मज़दूरों के दुश्मन हैं बल्कि आम तौर पर देखा जाये तो ये पूरे समाज के भी दुश्मन हैं। इनका मुक़ाबला करने के लिए मज़दूर वर्ग को न सिर्फ अपने वर्ग हितों की रक्षा के लिए संगठित होकर पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ सुनियोजित लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी, बल्कि साथ ही साथ महँगाई, बेरोज़गारी, महिलाओं की बराबरी तथा जाति और धर्म की कट्टरता के ख़िलाफ़ भी जनता को जागरूक करते हुए अपने जनवादी अधिकारों की लड़ाई को संगठित करना होगा।

उन्हें यह समझना होगा कि औद्योगिक कारपोरेट घराने और वित्त क्षेत्र के मगरमच्छ नवउदारवाद की

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

मुनाफ़े की व्यवस्था में हम मज़दूरों का कोई भविष्य नहीं

मेरा नाम अनुप तिवारी, उम्र 37 साल है और मैं ज़िला आरा, बिहार का मूल निवासी हूँ। मैं 1992 में रोजी-रोटी की तलाश में दिल्ली आया था। शुरु में मैंने एक ख़राद मशीन पर काम किया, फिर एक ब्रेक बनाने वाली फ़ैक्टरी में काम पकड़ा। फ़ैक्टरी का न. के-250, करावल नगर था और मालिक का नाम अमरीत सिंह था। मुझे महीने का 850 रु वेतन मिलता था। चार महीने काम करने के बाद मेरा हाथ मशीन में आ गया जिससे दायें हाथ की पहली दो अँगुलियाँ तो एकदम पिस गयी और बाक़ी दो अँगुलियाँ भी कट गयीं। मशीन की खराबी के बारे में हमने पहले ही मालिक को बताया था किन्तु उसने कोई ध्यान नहीं दिया। दुर्घटना के बाद मालिक ने बेटा-बेटा करके बहलाया और कहा कि मैं इलाज करा दूँगा और जब तक ठीक नहीं हो जाते पूरी तनख़्वाह भी दूँगा। घायल हाथ पर बन्धी पट्टी को गले में लटकाकर और दूसरे हाथ में टिफिन लेकर मैं फ़ैक्टरी आता और झाड़ू-बुहारी करके घर चला जाता। यह सब 5-6 दिन ही चल पाया था, फिर मालिक मुझे यह कहकर लक्ष्मी नगर ले गया कि वहाँ उसके भाई की फ़ैक्टरी है और उसमें एक आदमी की ज़रूरत है। वहाँ जाने पर मालिक व उसके भाई ने कुछ काग़ज़ों पर दस्तख़त करने को कहा, लेकिन पहले हमसे कभी भी दस्तख़त नहीं कराये जाते थे, मुझे दाल में कुछ काला लगा तो मैंने मना कर दिया। इसके बाद मालिक अपने असली रंग में आ गया, मेरे साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती व मार-पीट की गयी और फिर भी न मानने पर मुझे कमरे में बन्द कर दिया गया। वहाँ से मैं पेशाब करने के बहाने जान छुड़ाकर भागा। मेरे एक हाथ में पट्टी थी, दूसरे में खाने का टिफिन और पैसे से जेब ख़ाली। किसी तरह बड़ी मुश्किल से मैं घर पहुँच पाया। मैं करीब 10 साल तक वकीलों, यूनियनों और लेबर कोर्टों के चक्कर काटता रहा, मैनें हाथ की दो अँगुलियाँ तो गँवाई ही साथ में काफ़ी पैसा भी केस में ख़र्च कर दिया, लेकिन अन्त में थकान और निराशा के अलावा कुछ नहीं हाथ लगा। वह वक़्त था और आज का वक़्त है मैंने कई तरह के काम पकड़े पर हर जगह मज़दूरों की मेहनत की भयंकर लूट होती है। आज मैं पी.वी.सी. लाइन पर कारीगर के तौर पर काम करता हूँ किन्तु मेरा वेतन कुल 6,500 रुपये है जबकि दिल्ली सरकार का कुशल मज़दूर का न्यूनतम वेतन 10,374 रुपये है। काम के दौरान ख़ूब धूल-धुआँ और बदबूदार गैस उड़ती है जिससे फेफड़ों के खराब होने का पूरा ख़तरा होता है। मालिक को हमारी सेहत नहीं चाहिए उसे केवल अपना मुनाफ़ा चाहिए। मज़दूर भाइयो, यह केवल मेरी कहानी नहीं है बल्कि देश के करोड़ों मज़दूरों की ऐसी ही कहानियाँ हैं। आज हम एकजुट होकर ही मुनाफ़े की इस व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ सकते हैं। हमें इस लड़ाई में मिठबोले मालिकों, धन्धेबाज वकीलों, और दलाल यूनियनों से भी सावधान रहना होगा।

-अनूप तिवारी, सादतपुर विस्तार, दिल्ली

हालात बदलने के लिए एक होना होगा

मेरा नाम मो. हाशिम है। मैं उत्तर प्रदेश का रहने वाला हूँ। ज़िला अलीगढ़ का रहने वाला हूँ। मेरे पापा मज़दूर थे। मेरे घर में बहुत परेशानी थी जब मैं केवल आठ साल का था तभी से गाँव में मेहनत करता था, इसके लिए मैं एक धनी किसान के पास काम करता था। वो मुझसे बहुत काम लेता था। जिस कारण मैं पढ़ नहीं पाया। बाद में मैं गाँव से अपने माँ-बाप को लेकर शहर में आया। मैं परिवार के साथ श्रीराम कालोनी, खजूरी खास दिल्ली में अपने मामा के पास मज़दूरी करता था। यहाँ भी मामा मुझे बहुत मारते थे। इनके पास मैंने करीब साल भर काम किया। एक दिन मुझे मज़दूर बिगुल अख़बार मिला। जिसको पढ़ने के बाद मुझे घुटन भरी ज़िन्दगी से लड़ने का तरीक़ा पता चला। बहुत से मेरे भाई आज भी उन्हीं फ़ैक्टरियों में काम करते हैं और मालिक की मार-फटकार सहते हैं। हम सब जैसे-तैसे ज़िन्दगी की गाड़ी खींच रहे हैं। मैं अब एक दूसरी जगह काम करता हूँ। मेरी उम्र तक़रीबन 24 साल है। वहाँ के मालिक से मैं अगर कारीगरों के हक़ के बारे में बोलता हूँ तो मालिक मुझसे चिढ़ता है और मशीन में ताला लगवा देता है। असल में सभी मालिकों की एक ही नीयत होती है - कैसे ज़्यादा से ज़्यादा मज़दूरों का ख़ून-पीसना निचोड़ा जाये।

आज मैं अपनी माँ और पत्नी के साथ खजूरी खास में किराये पर रहता हूँ। 12 घण्टे काम करता हूँ जिससे मैं 8000 हज़ार रुपये कमाता हूँ, जिसमें से 2000 रुपये कमरे का किराया जाता है, बचे 6000 रुपये में मुश्किल से घर का ख़र्च चलता है, न तो इतने पैसे में हम दूध, फल, अच्छा खाना खा सकते हैं, न ही अच्छे कपड़े पहन सकते हैं। मैं जानता हूँ कि मेरे जैसे कितने भाई हैं जो इसी तरह ज़िन्दगी जीते हैं। बाक़ी सरकार भी मज़दूर के लिए कुछ नहीं करती है। असल में सरकार भी पैसे वालों की होती है, क्योंकि सारे देश का काम तो हम मज़दूर करते हैं, ये पैसे वाले तो मज़े लेते हैं। हम मेहनत करके ख़ून-पसीना बहाते हैं, तब भी दो वक़्त की रोटी नसीब नहीं होती। इसलिए इसे बदलने में सभी मज़दूर भाइयों को एक होने की ज़रूरत है।

– मो. हाशिम,
खजूरी खास, दिल्ली

मज़दूर बिगुल यहाँ से प्राप्त करें :

दिल्ली : मज़दूर पाठशाला, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर (योगेश) 09289498250; वज़ीरपुर (सनी) 09873358124; पीरागढ़ी (नवीन) 08750045975; शहीद भगतसिंह लाइब्रेरी, ए ब्लॉक, शाहबाद डेयरी, फ़ोन - 09971158783
गुड़गाँव : (अजय) 09540436262, (राजकुमार) 09919146445
लुधियाना : मज़दूर पुस्तकालय, राजीव गाँधी कालोनी, फ़ोकल प्वाइण्ट थाने के पास, फ़ोन - 09646150249 ● चण्डीगढ़ : (मानव) 09888808188
लखनऊ : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, फ़ोन - 0522-2786782, (सत्यम) 08853093555
गोरखपुर : जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, फ़ोन - 09455920657
इलाहाबाद : (प्रसेन) 08115491369 ● पटना : (विशाल) 09576203525
सिरसा : डॉ. सुखदेव हुन्दल की क्लिनिक, सन्तनगर, फ़ोन - 09813192365
मुम्बई : नारायण, रूम नं. 7, धनलक्ष्मी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, प्लाट नं. बी-6, सेक्टर 12, खारघर, नवी मुम्बई, फ़ोन - 09619039793

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीआर्डर के लिए पता:
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता: (वार्षिक) 70 रुपये (डाकख़र्च सहित);
(आजीवन) 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658,
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - 2000/-

अक्टूबर क्रान्ति के सत्तानवे वर्ष पूरे होने के अवसर पर वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र में सांस्कृतिक सन्ध्या का आयोजन

आज से 97 वर्ष पहले रूस में 7 नवम्बर 1917 को मज़दूर वर्ग ने रूस के निरंकुश ज़ारशाही पूँजीपतियों की लुटेरी व्यवस्था को उखाड़ फेंका था और अपना राज स्थापित किया था। इतिहास में इसे अक्टूबर क्रान्ति के नाम से जाना जाता है। अक्टूबर क्रान्ति दुनिया भर के मज़दूरों के लिए ऐसी जलती हुई मशाल है जिसकी रोशनी में मज़दूर वर्ग आनेवाले समय का निर्णायक युद्ध लड़ेगा। रूस में सम्पन्न हुई इस मज़दूर क्रान्ति के 97 वर्ष पूरे होने के अवसर पर दिल्ली के वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र के बी-ब्लॉक स्थित राजा पार्क में 'बिगुल मज़दूर दस्ता, दिल्ली' द्वारा सांस्कृतिक सन्ध्या का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में 'दिल्ली इस्पात मज़दूर यूनियन' ने भी अपना सक्रिय सहयोग दिया। यह कार्यक्रम इस सोच के तहत आयोजित किया गया कि आज के इस प्रतिक्रियावादी दौर में सर्वहारा वर्ग को उसके गौरवशाली अतीत की याद दिलाते हुए आज के संघर्षों के लिए तैयार करना और उसे उसके ऐतिहासिक मिशन यानी मज़दूर राज की स्थापना की ओर उन्मुख करना एक अहम कार्यभार है।

कार्यक्रम में 'विहान सांस्कृतिक मंच, दिल्ली' के द्वारा क्रान्तिकारी गीतों एवं 'अक्टूबर क्रान्ति की जली मशाल' नाटक की प्रस्तुति की गयी तथा मज़दूर कार्यकर्ताओं ने अपनी बात भी रखी। इस अवसर पर 'मज़दूर बिगुल' अख़बार के सम्पादक अभिनव भी उपस्थित थे।

'दिल्ली इस्पात मज़दूर यूनियन' की क़ानूनी सलाहकार शिवानी ने अपनी बात में कहा कि हमें सिर्फ़ अपनी आर्थिक माँगों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। आर्थिक माँगों की लड़ाइयाँ जीत लेना हमारी ज़िन्दगी में थोड़ी सी राहत दे सकता है लेकिन उसे बदल नहीं सकता। हमारी ज़िन्दगी मज़दूर राज में ही बदल सकती है, और मज़दूर राज क़ायम करने के लिए मज़दूर वर्ग की अपनी क्रान्तिकारी पार्टी का होना बहुत ज़रूरी है। तमाम मालिकों और पूँजीपतियों की अपनी राजनीतिक पार्टियाँ हैं। ये पार्टियाँ इनके दमनतन्त्र को क़ायम रखने और जनता को भरमाने का काम करती हैं। मज़दूर वर्ग की अपनी सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी ही उसे सही रास्ता दिखा सकती है, उसके हर संघर्ष को सही दिशा दे सकती है। रूस में मज़दूरों की क्रान्तिकारी पार्टी बोल्शेविक पार्टी ने मज़दूरों का मार्गदर्शन किया और वहाँ मज़दूर राज क़ायम हो सका। उन्होंने कहा कि आज की तमाम संशोधनवादी, नक़ली लाल झण्डेवाली पार्टियों यथा, सीपीआई, सीपीआई (एम), सीपीआई (माले) लिबरेशन आदि-आदि से बचकर रहने की ज़रूरत है। इनमें लाल जैसा तो कुछ बचा ही नहीं है, सबकुछ गुलाबी हो गया है। ये मज़दूर वर्ग की पीठ में छुरा घोंपने का काम कर रही हैं। आज जब क्रान्ति के ऊपर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी है; ऐसे में ज़्यादा ज़रूरत है कि हम अक्टूबर क्रान्ति को याद करें क्योंकि नयी शुरुआत की सही दिशा वहीं से मिल सकती है।

'बिगुल मज़दूर दस्ता' के सनी ने मज़दूरों को अक्टूबर क्रान्ति का इतिहास बताते हुए कहा कि अक्टूबर क्रान्ति मज़दूर वर्ग की पहली ऐसी क्रान्ति थी जिसमें योजना, कार्यक्रम, रणनीतिक कुशलता, विचारधारा और दर्शन का सामंजस्य था। महज किताबी समझी जानेवाली बातों को रूसी मज़दूरों ने वास्तविकता में बदल डाला। अक्टूबर क्रान्ति हमें यह बताती है कि असम्भव को सम्भव बनाने का काम मज़दूर वर्ग कर सकता है।

'मज़दूर बिगुल' अख़बार के सम्पादक अभिनव ने अपनी बात में कहा कि आज देश में साम्प्रदायिक फासीवादी ताक़तें सक्रिय हैं। इनका मुख्य मकसद है मेहनतकश अवाम को धर्म, जाति और क्षेत्र के नाम पर बाँटकर अपना उल्लू सीधा करना। ये ताक़तें तब तक मजबूत हैं जब तक मज़दूर वर्ग एकजुट नहीं है। गाय बचाओ, सफ़ाई अभियान, गंगा बचाओ आन्दोलन, ये तमाम ऐसी सरकारी नौटंकियाँ हैं जिनकी आड़ में दमन के काले क़ानूनों को अन्तिम रूप दिया जा रहा है। उन्होंने मज़दूरों को नियमित रूप से अख़बार पढ़ने की सलाह देते हुए कहा कि मज़दूरों को देश-दुनिया में हो रहे बदलावों पर अपनी नज़र रखनी चाहिए। मज़दूर वर्ग का अपना अख़बार ही देश भर के मज़दूरों को एकसूत्र में जोड़ सकता है। चूँकि यह मज़दूरों का अपना अख़बार होता है, इसलिए यह मज़दूरों को शिक्षित करने के साथ-साथ वर्तमान में मौजूद सत्ता के दाँव-पेंचों का राजनीतिक भण्डाफोड़ भी करता है।

'बिगुल मज़दूर दस्ता' के अरविन्द ने कहा कि अक्टूबर क्रान्ति ने मज़दूर वर्ग को सोवियतों के रूप में सबसे मजबूत, रचनात्मक और क्रान्तिकारी हथियार सौंपा है। ये सोवियतें जनता की पंचायतें थीं। ये सोवियतें मिलों और कारख़ानों के मज़दूर प्रतिनिधियों की थीं। सैनिकों और जहाज़ियों की भी सोवियतें बनायी गयीं जिन्हें मज़दूरों की सोवियतों से जोड़ा गया। मास्को-सोवियत ने जनता के सशस्त्र विद्रोह का नेतृत्व किया। सोवियतों ने जनता की रचनात्मक पहलक़दमी का क्रान्तिकारी उदाहरण प्रस्तुत किया है। आज भी गाँवों से लेकर शहरों के हर गली, मुहल्ले में इस तरह की लोकस्वराज पंचायतें गठित की जा सकती हैं, फ़ैक्ट्रियों में ऐसी कारख़ाना समितियाँ बनायी जा सकती हैं। ये पंचायतें आज की पंचायतों जैसी नहीं होंगी, जिनमें धनबल और बाहुबल का बोलबाला है, बल्कि ये जनता के अपने क्रान्तिकारी जनसंगठनों के रूप में काम करेंगीं। जनता इनके ज़रिये अपने जनवादी अधिकारों जैसे स्कूल, अस्पताल, सड़क, साफ़ पीने का पानी आदि की माँग लेकर लड़ेगी और कारख़ानों में काम की जगह के सवालों को उठाते हुए इन लड़ाइयों को व्यवस्था के ख़िलाफ़ बड़ी लड़ाई में बदलना होगा।

'दिल्ली इस्पात मज़दूर यूनियन' के बाबूराम ने अपनी बात रखते हुए कहा कि अक्टूबर क्रान्ति हमें हर हाल में एकजुट रहने और सही-ग़लत की पहचान करने का रास्ता बताती है। हमें अपना अतीत और संघर्षों की गौरवशाली परम्परा को जानने की ज़रूरत है। कार्यक्रम में मज़दूरों ने बड़ी भारी संख्या में शिरकत की। स्त्री मज़दूरों ने भी अपनी सन्तोषजनक उपस्थिति दर्ज करायी।

– बिगुल संवाददाता

हीरो मोटोकार्प में भर्ती प्रक्रिया की एक तस्वीर!

जैसाकि आप सबको ज्ञात होगा कि हीरो मोटोकार्प की शाखा स्पेयर पार्ट डिपार्टमेंट (एसपीडी) में पिछले महीने 11 अगस्त 2014 को कम्पनी प्रबन्धन ने 700 मज़दूरों को काम से निकाल दिया था जो कि पिछले 15-17 सालों से काम कर रहे थे। कम्पनी प्रबन्धन की मंशा साफ़ है कि इन तमाम (700) मज़दूरों को निकालकर कम वेतन पर नये मज़दूरों को ठेके पर छः महीने के लिए भर्ती किया जाये, सिर्फ़ गुड़गाँव में ही लाखों लाख मज़दूरों की सदस्यता वाली ट्रेड यूनियनें काम कर रही हैं जिनका नाम क्रमश सीटू, एटक, एचएमएस, आदि-आदि हैं। इन तमाम ट्रेड यूनियनों ने इन निकाले गये 700 मज़दूरों के लिए शोक व्यक्त करने के अलावा कुछ विशेष क़दम नहीं उठाये, क्योंकि अन्दर खाने ये सारी ट्रेड यूनियनें उन्हीं फ़ैक्टरी मालिकों के लिए काम करती हैं और मज़दूरों से किये गये धोखे और ग़द्दारी की अच्छी रक़में वसूल करती हैं जिससे कि इनकी दुकानदारी चलती रहती है। ख़ैर हम बात कर रहे थे हीरो मोटोकार्प में भर्ती प्रक्रिया की। हीरो मोटोकार्प की शाखा (एसपीडी) से निकाले गये 700 मज़दूरों से मोलभाव किया गया कि पिछले सभी सालों का 10 हज़ार रुपये प्रति साल के हिसाब से और जो हिसाब बनता है, वो सारा हिसाब ले लो, और नये सिरे से भर्ती हो जाओ। कुछ मज़दूर कम्पनी की इन्ही शर्तों पर भर्ती हो गये। दूसरी कम्पनी में 6-6 महीने जो मज़दूर काम कर चुके हैं, उन्हें भी कम्पनी प्रबन्धन ने फ़ोन कर-कर के भर्ती के लिए बुलाया, कुछ मज़दूर इस प्रकार भर्ती हुए। इतनी भर्ती करने के बाद भी कम्पनी को अभी 100 मज़दूरों की और भी ज़रूरत थी। कम्पनी प्रबन्धन ने तीसरा तरीक़ा खुली भर्ती का अपनाया और यह खुली भर्ती की प्रक्रिया 20 अगस्त से लगातार जारी है। बेरोज़गारों की भीड़ रोज़ हीरो कम्पनी के गेट पर खड़ी होती है, उनमें से कुछ का बायोडाटा, फ़ार्म लिया जाता है। कुछ नियम-शर्तें बतायी जाती हैं, घण्टों इन्तज़ार करवाया जाता है, उसके बाद दो-तीन जगह इण्टरव्यू लिया जाता है। और फिर एक हफ़्ते बाद बुलाया जाता है, जिसकी सबसे अच्छी डिग्री हो या जो इण्टरव्यू मे अच्छे नम्बर लाता है उसकी नौकरी पक्की कर दी जाती है।

नियम व शर्तें कुछ इस प्रकार हैं - 10 सितम्बर 2014 सुबह 11 बजे (पढ़े-लिखे बेरोज़गारों की फ़ौज सुबह 8 बजे से ही तैनात थी।) करीब 250 लड़के अपनी क़िस्मत आज़माने के लिए गेट के बाहर अपने पहचान-पत्र व डिग्रियाँ हाथ में लिये खड़े थे। सहसा कम्पनी के अन्दर से ठेकेदार के दो मज़दूर आये और उन्होंने लड़कों को भर्ती होने की प्रक्रिया के बारे में बताया कि तुम लोग शोर बहुत मचा रहे हो, अब चुपचाप अनुशासन में मेरी बात सुनो। भर्ती उसी लड़के की होगी, जिसका वज़न 50 किलो से ऊपर होगा, जिसकी 10वीं, 12वीं की मार्कशीट व पहचान पत्र की ओरिजनल (असली) कापी उसके पास होगी, जिसका खाता किसी बैंक में होगा, जिसको अंग्रेज़ी का अच्छा ज्ञान होगा। जो इन शर्तों को पूरा करता हो वो यहाँ रुके बाक़ी सब यहाँ से चले जायें। और हाँ (आईटीआई) वाले लड़कों को भी नहीं लिया जायेगा। इतनी शर्तों के बाद आधी संख्या तो घट गयी और बची आधी संख्या तो उसकी भर्ती प्रक्रिया का ज़िक्र हमने पहले ही कर दिया है।

आज असली समस्या तो यह है कि जब तक हम लोग यूँ ही अकेले व बिखरे रहेंगे, तब तक हम लोगों का इस्तेमाल ये तमाम पूँजीपति करते रहेंगे और हमको भर्ती करके हम पर एहसान जताते रहेंगे। इसलिए आज के समय में हम सबको मिलकर रोज़गार के अधिकार के लिए लड़ना होगा और अगर यह सरकार हमको रोज़गार नहीं दे पाती तो ऐसी हालत मे बेरोज़गारी भत्ता देने की गारण्टी ले, नहीं तो यूँ ही हम लोग बेरोज़गार घूमते रहेंगे और अपनी समस्याओं के ज़िम्मेदार हम खुद ही होंगे।

– बिगुल संवाददाता, गुड़गाँव

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी की लफ़्फ़ाज़ी और मज़दूर आबादी!

जब से नयी मोदी सरकार यानी भाजपा केन्द्र में विराजमान है, तब से लगातार आलू, प्याज, टमाटर व हरी सब्ज़ियों के दाम सातवें आसमान पर हैं। भले ही अख़बारी आँकड़ों में महँगाई घटने के दावे रोज़ किये जा रहे हैं। पता नहीं इसका कारण क्या है? क्या जमाखोरों को जमाखोरी करने का प्रोत्साहन मिल गया है, क्योंकि भाजपा सरकार अधिकतर छोटे व्यापारियों और बड़े दुकानदारों का विशेष प्रतिनिधित्व करती है या और कोई कारण है। ख़ैर, कारण जो भी है! इस तमाम महँगाई की वजह से मज़दूर वर्ग की ज़िन्दगी पर सीधा प्रभाव है और थाली से हरी सब्ज़ियाँ, दाल ग़ायब हैं। बच्चों का दूध तो पहले ही बन्द हो चुका है।

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी की लफ़्फ़ाज़ियाँ उनके तमाम भाषणों, टी. वी पर विज्ञापनों व अख़बारों में विज्ञापनों के ज़रिये आम आबादी को ज़बरदस्ती सुननी या देखनी ही पड़ती हैं, जिसमें मोदी सरकार ग़रीबों को समर्पित प्रधानमन्त्री जन-धन योजना, मेक इन इण्डिया, जापान के 2 लाख 10 हज़ार करोड़ के निवेश से भारत में रोज़गार का सृजन होगा, 2019 तक स्वच्छ भारत अभियान से स्वच्छ भारत का निर्माण होगा आदि-आदि। मीडिया और अख़बारों में ऐसे नारों से और जुमलों से पूरी मज़दूर आबादी भ्रमित होती है कि भइया, मोदी सरकार तो ग़रीबों और मज़दूरों की सरकार है। मगर जब वास्तविकता में महँगाई से पाला पड़ता है तो इस सरकार के ख़िलाफ़ गुस्सा भी यकायक फूट पड़ता है।

तो आइये इस बात पर ग़ौर करें कि मोदी सरकार कितना ग़रीबों और मज़दूरों के साथ है। मोदी सरकार ने आते ही बिना देर किये कारख़ाना क़ानून 1948, ट्रेड यूनियन क़ानून 1926, औद्योगिक विवाद क़ानून 1948, ठेका मज़दूरी क़ानून 1971 से लेकर प्रशिक्षु अधिनियम (एप्रेंटिस एक्ट) 1961 कुल मिलाकर श्रम क़ानूनों में 54 सुधार प्रस्ताव पारित किये हैं यानी श्रम क़ानूनों को और भी कमज़ोर और ढीला करने की कवायद शुरू कर दी है, जिससे कि मज़दूर वर्ग की बची-खुची संघर्ष की ताक़त को भी पूँजीपतियों के हाथों सौंप दिया जाये। इसका मतलब साफ़ है कि मज़दूर वर्ग के गले में गुलामी का पट्टा डालकर पूँजीपतियों के खूँटे पर बाँध दिया जाये। दूसरा हम मज़दूरों की तरफ़ से यह पुरजोर अपील है कि अगर मोदी सरकार वाकई ग़रीबों और मज़दूरों की सरकार है, तो ज़्यादा लफ़्फ़ाज़ियाँ न करते हुए राष्ट्रीय स्तर पर हम मज़दूरों का वेतन आज की महँगाई स्तर को देखते हुए कम से कम 15000 रुपये किया जाये। जिससे कि हमारी ज़िन्दगी में कुछ खुशहाली आये।

– राहुल,
करावल नगर मज़दूर यूनियन

लाज एक्सपोर्ट के मज़दूर और किराये के नेता!

दलाल यूनियन नेताओं के जाल में फँसे मज़दूर किस क़दर असहाय हो सकते हैं इसका ताज़ा उदाहरण नोएडा के जे-1, सेक्टर-63 स्थित लाज एक्सपोर्ट लिमिटेड में देखने को मिला। यह कम्पनी 1998 से काम कर रही है। आज इसमें क़रीब 500 मज़दूर काम करते हैं जिसमें क़रीब 125 महिला मज़दूर भी हैं। इस कम्पनी में बने सिले-सिलाये कपड़े विदेशी बाज़ारों में निर्यात किये जाते हैं जिसकी मुख्य ख़रीददार अमेरिका की वॉलकॉम कम्पनी है जिसके आलीशान शोरूम उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका, यूरोप, अफ़्रीका और एशिया के कई देशों में हैं।

लाज एक्सपोर्ट के मज़दूरों की शिकायत थी कि कम्पनी उनकी मज़दूरी में से 12.5 प्रतिशत पीएफ़ का पैसा तो काट रही है लेकिन उसे उनके पीएफ़ अकाउण्ट में जमा नहीं करवा रही है। एक मज़दूर ने बताया कि जब वह अपना अकाउण्ट चेक करने पीएफ़ विभाग गया तो वहाँ उसे बताया गया कि दिया गया अकाउण्ट नम्बर फ़र्ज़ी है। मज़दूरों ने बताया कि पहले तो उन्हें वेतन पर्ची भी नहीं दी जाती थी। लेकिन काफ़ी दबाव बनाने के बाद जब यह मिलने भी लगी तो उसमें लाज एक्सपोर्ट की जगह एम. एम. इण्टरप्राइज़ेज़ या डी.के. इण्टरप्राइज़ेज़ का नाम लिखा आने लगा। इस वेतन पर्ची पर कोई मुहर नहीं होती और न ही उस पर जारीकर्ता के हस्ताक्षर रहते हैं। इन वेतन पर्चियों पर कम्पनी का पता भी जे-1, सेक्टर-63 की जगह सेक्टर-62 का पता छपा रहता है। मज़दूरों का कहना है कि जब वे वेतन पर्ची पर दिये गये पते पर मालूम करने गये तो वहाँ पर कोई और ही कम्पनी काम कर रही थी।

एक महिला मज़दूर ने बताया कि उनके काम के हालात बेहद ख़राब हैं। कम्पनी किसी भी क़िस्म की सुविधा नहीं देती। यहाँ तक कि कम्पनी के भीतर प्राथमिक उपचार तक की सुविधा नहीं है। उसने बताया कि एक महिला को नर्स के तौर पर पेश किया जाता है, लेकिन हक़ीकत में वो एक ऑपरेटर है और कम्पनी में मज़दूरी करती है। महिला मज़दूरों की सुरक्षा को लेकर कम्पनी कितनी फ़िक्रमन्द है इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि विक्रम गुप्ता नाम का कम्पनी अधिकारी महिला शौचालयों तक में घुस जाता है। मज़दूरों ने बताया कि उन्हें क़ानूनी तौर पर नियत छुट्टियाँ जैसे ईएल, पीएल, सीएलएसएल आदि तक नहीं मिलती। मज़दूरी में बढ़ोतरी की बात तो छोड़ ही दी जाये, नियमित रूप से लगने वाले महँगाई भत्ते का भुगतान भी नहीं किया जाता।

कम्पनी के गेट के बाहर विरोध कर रहे मज़दूर

कम्पनी की बेईमानियों के ख़िलाफ़ मज़दूर पहले से ही आक्रोशित थे। हाल ही में कम्पनी ने ओवरटाइम में एक घण्टे की कटौती भी कर दी। मज़दूरों को महसूस हुआ कि इस तरह तो उनकी मासिक आमदनी काफ़ी घट जायेगी और वे पीएफ़ अकाउण्ट में धाँधली के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने लगे। 1 नवम्बर को जब विवाद ज़्यादा बढ़ गया तब दोपहर साढ़े तीन बजे कम्पनी ने गुण्डे बुलवाये और मज़दूरों को धक्के देकर कम्पनी से बाहर कर दिया गया। गुण्डों ने महिला मज़दूरों के साथ बदसलूकी और मारपीट भी की। मज़दूर इस अन्याय की शिकायत के लिए रिपोर्ट लिखवाने सेक्टर-63 की पुलिस चौकी पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि कम्पनी का एक दलाल चौकी इंचार्ज से बातचीत कर रहा था। जैसा कि होना ही था, चौकी इंचार्ज ने मज़दूरों की रिपोर्ट लिखने से इन्कार कर दिया और उन्हें वापस कम्पनी जाने की सलाह दी। आमतौर पर देखा गया है कि ऐसे हालात में मज़दूर अपने संघर्षों को दिशा देने के लिए किराये का नेता ढूँढ़ने निकल पड़ते हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि मज़दूर अपने गली-मुहल्लों में ट्रेड-यूनियन की दुकान खोले नेताओं को ही आन्दोलन की बागडोर सौंप देते हैं। लाज एक्सपोर्ट के मज़दूरों ने भी यही किया। मज़दूरों के बुलावे पर पाँच-छह दलाल नेता उनके बीच पहुँच गये। पहले तो ये दलाल आपस में ही बन्दरबाँट के लिए खींचातानी करते हुए दिखे, लेकिन जल्दी ही उनके बीच एकता क़ायम हो गयी। एक दलाल नेता क़रीब सौ-सवा सौ मज़दूरों को लेकर अपने खोड़ा कार्यालय पर पहुँच गया। बाक़ी मज़दूर सम्भवत: हताश होकर छिटक गये और अपने-अपने घरों की ओर चले गये। जब नेताओं ने देखा कि सौ-सवा सौ मज़दूर उनके कहने में आ चुके हैं और अब उनके सामने कहीं और जाने का कोई दूसरा रास्ता भी नहीं बचा है तब उन्होंने मज़दूरों को दबे स्वरों में धमकाना शुरू किया और यहाँ तक कहा कि अगर कम्पनी वालों से पैसा मिले तो हम वह भी लेने को तैयार हैं।

इस घटना के बाद लाज एक्सपोर्ट के ही कुछ मज़दूरों से व्यक्तिगत बातचीत के दौरान पता चला कि ज़्यादातर मज़दूर एकता के अभाव को अपनी असफलता का मुख्य कारण मान रहे हैं। यह बात एक हद तक सही भी है। लेकिन क्या आज मज़दूर यह जानते हैं कि उनके बीच एकता कैसे क़ायम हो पायेगी? इसका रास्ता क्या होगा? अगर मज़दूर किसी भ्रष्ट नेता या दलाल यूनियन या फिर किसी पूँजीवादी दल के इर्द-गिर्द संगठित हो भी जायें तो क्या वे पूँजी के विरुद्ध अपने संघर्षों को सही दिशा में बढ़ा सकने में सफल होंगे?

– बिगुल संवाददाता

वजीरपुर स्टील उद्योग: मौत और मायूसी के कारखाने

कौन कहता है कि गुलामी खत्म हो चुकी है? जी हाँ गुलामी बदस्तूर जारी है, बस एक नये रूप में। आज गुलामों को जंजीरों से नहीं बाँधा जाता, ना ही उनकी खरीद फ़रोख्त होती है, लेकिन जीवन के हालात, कार्यस्थल की परिस्थितियाँ किसी गुलामों से कम नहीं है। इन गुलामों को आज़ादी है अपने मालिक चुनने की लेकिन ज़िन्दगी की आज़ादी नहीं।

बिल्कुल सही पढ़ा आपने, यह कोई काल्पनिक कथा नहीं है, यह है असली कहानी वजीरपुर औद्योगिक क्षेत्र में काम करनेवाले लाखों मज़दूरों की, जिनकी ज़िन्दगी किसी नर्क से कम नहीं।

वजीरपुर औद्योगिक क्षेत्र जो कि भारत के सबसे बड़े स्टील उद्योगों में से एक है। जहाँ 'स्टेनलेस स्टील' के बर्तन बनाने का काम होता है। लेकिन इन कारखानों में काम की परिस्थिति बेहद खतरनाक है, आये दिन मज़दूरों की मौत होना बेहद उच्च ताप पर झुलसना तो रोज की घटना है। ऊपर से औद्योगिके कचरे की वजह से झुग्गियों की यह हालत है कि बजबजाती नालियों में मच्छर भी पैदा होने से डरते हैं, क्योंकि वहाँ सिर्फ गन्दा पानी ही नहीं बहता, तेजाब भी बहता है।

आइए देखते हैं यहाँ के कारखानों में काम कैसे होता है और दुर्घटनायें काम का जैसे हिस्सा बन गयी हैं।

सबसे पहले स्टील की लम्बी प्लेट(इंत) जो कि करीब 15-16 फीट लम्बी और 6 इंच चौड़ी होती है, शुरुआती कच्चे माल के रूप में आता है। फिर उसे कटर की मशीन पर ले जाया जाता है, जहाँ पर लम्बे प्लेट की कटाई होती है, कटाई के बाद लगभग डेढ़ फीट के टुकड़े में बन जाता है फिर इस टुकड़ें को गरम रोला मशीन पर भेजा जाता है। यहाँ मशीन की मदद से बड़ी भट्ठी चलती है जिसमें तापमान करीब 1300 डिग्री सेण्टीग्रेड होता है। इस भट्ठी के एक ओर कुछ मज़दूर स्टील के टुकड़ों को रेलिंग मशीन में डालते हैं और दूसरी तरफ यह टुकड़ा गरम होकर लोहे की चादर का रूप ग्रहण करता है। इस चादर को निकालने का काम मज़दूर खड़े होकर करते हैं। इतनी गर्मी में वहाँ खड़े होकर स्टील की भारी पत्ती को उठाना और मशीन से बाहर निकालना लगभग असम्भव काम होता है। लगातार आधा घण्टा काम करना भी बेहद कष्टदायक होता है। मज़दूरों का झुलसना और गमी की वजह से चमड़े ओर शरीर का जर्जर होना बिल्कुल आम बात हे। कहने की ज़रूरत नहीं कि सुरक्षा का कोई इन्तजाम नहीं होता।

फिर गर्म मशीन के बाद पत्ती को सफाई के लिए तेजाब के कारखाने में भेजा जाता है। यहाँ स्टील की मिलावट को हटाया जाता है ओर जंग से बचने के लिए उस पर ऑक्साईड की परत चढ़ायी जाती है। स्टील के प्लेट पर अशुद्धता के रूप में तेल, ग्रीस, लोहे का अंश और दूसरे अन्य पदार्थ मौजूद रहते हैं। फिर इस चादर को सल्फ्यूरिक एसिड या नाइट्रिक एसिड में धोया जाता है। इस प्रक्रिया में स्टील की मिलावट दूर हो जाती है और चादर पर ऑक्साइड की बेहद पतली परत चढ़ जाती है, जो कि जंगरोधक का काम करती है। तेजाब से मज़दूरों के हाथ जलने का खतरा रहता है और साँस के माध्यम से शरीर के अन्दर जाने से कैंसर और टीबी की बिमारी होती है।

तेजाब से धुलाई होने के बाद फोड़ाई मशीन की बारी आती है। यहाँ पर काम सबसे खतरनाक और जानलेवा होता है। यहाँ स्टील की चादर को मजबूती और आकार प्रदान किया जाता है। यहाँ ठण्डी रोलिंग मशीन में स्टील शीट की रोलिंग के दौरान पत्ती टूटकर बहुत तेजी से शरीर में घुस जाती है। पत्ती के पेट या सीने में घुसने पर मौत तक हो जाती है। हाथ पैर कटना या शरीर में अंग भंग होना आम बात है। सुरक्षा के इन्तजाम के लिए पूरे शरीर को ढँकनेवाली स्टील की प्लेट जो कि कमर में एक बेल्ट से जुड़ी हुई हो, पैरों में अच्छी गुणवत्ता वाले खास किस्म के बूट हाने चाहिये। पर यहाँ सुरक्षा के नाम पर महज खानापूर्ति है जो कपड़ों के दस्तानों और घटिया जूतों से की जाती है। घायल होने पर मालिक मज़दूरों का अच्छा इलाज कराने के बजाय झोलाछाप डॉक्टरों से दिखलाकर अपना पल्ला झाड़ लेता है। अगर मज़दूर काम के लायक नहीं रह गया तो बिना किसी मुआवजे के या नाममात्र का मुआवजा देकर काम से निकाल देता है।

फोड़ाई मशीन से निकलने के बाद स्टील की चादर भट्ठी पर जाती है जहाँ पर इसे ताप दिया जाता हैं। इस भट्ठी का भी तापमान तेज होता है लेकिन गरम रोला के मुकाबले कम होता है।

तपायी भट्ठी से निकलने के बाद यह फिर से ठण्डी रोलिंग मशीन पर रोलिंग के लिए जाती है। इसे तैयारी मशीन भी कहते हैं यहाँ भी समस्या फोड़ायी मशीन जैसी है, यानी स्टील की पत्ती टूटकर बदन में घुस जाती है। लेकिन फोड़ायी के मुकाबले खतरा यहाँ थोड़ा कम है।

तैयारी से निकलकर फर्नेस पर जाने के बाद स्टील के प्लेट को प्रेस मशीन में भेजा जाता है। यहाँ स्टील प्लेट का बर्तन का आकार प्रदान करने का काम होता है। फोड़ायी मशीन के बाद सबसे खतरनाक काम प्रेस लाईन के मज़दूरों का है। यहाँ बर्तन को आकार प्रदान करते हुए मशीन में फँसकर उँगलियाँ और हाथ कट जाया करते हैं। वजीरपुर के ऐसे हजारों मज़दूरों की उँगलियाँ कटी हुई हैं।

प्रेस लाईन से निकलने के बाद जब बर्तन बन जाता है तो इसमें चमक प्रदान करने के लिए पॉलिश में भेजा जाता है। पॉलिश के दौरान हानिकारक रसायन उनके शरीर पर पड़ता रहता है जिससे पूरे शरीर पर कालिख-सी पुत जाती है। यह रसायन साँस के माध्यम से शरीर के भीतर जाकर कैंसर और टीबी जैसी घातक बीमारियों को जन्म देता है।

यहाँ हमने फैक्ट्रियों में काम के हालात और उनसे सम्बन्धित दुर्घटनाओं की चर्चा की। ऐसा नहीं है कि यहाँ मज़दूर वर्ग के ''हितैषी'' मौजूद नहीं हैं या इनको इन हालात की जानकारियाँ नहीं हैं। देश के ''नामी-गिरामी'' ट्रेड यूनियनों की पूरी बारात है यहाँ पर। इनका मुख्य पेशा दलाली है। ये मज़दूरों से केस दर्ज कराने के नाम पर पैसा लूटने का काम करती हैं और मालिकों को बचाने का काम करती हैं। जब भी कोई मज़दूर किसी दुर्घटना का शिकार होता है तो ये यूनियनें मज़दूरों को हक़ और न्याय दिलाने के बजाय मालिकों से मिलकर(पैसे खाकर) शर्मनाक समझौता करने पर मजबूर कर देती हैं। मज़दूरों की तकलीफ यहीं खत्म नहीं होती। फैक्ट्रियों में पिसने के बाद झुग्गियों में जाते हैं तो रिहायश की स्थितियाँ नर्क से कम नहीं हैं। नीचे बजबजाती नालियाँ और इनके बीच में मात्र छ: फीट चौड़े और आठ फीट लम्बे कमरे में एक साथ तीन से चार लोग रहने को मजबूर हैं। इन नालियों में फैक्ट्रियों से निकलनेवाला कचरा और तेजाब बहता रहता है जिनसे बच्चों के पैर खराब होते हैं और कई जानलेवा बीमारियाँ घेरती हैं। साफ सड़कों पर कूड़े फिंकवाकर झाड़ू लगानेवाले नरेन्द्र मोदी क चमचों को वजीरपुर की गन्दी बस्तियाँ नज़र नहीं आतीं। पूँजीपतियों का यह पालतू कुत्ता मोदी जो अपने मालिक की सेवा के लिए मज़दूर वर्ग के ऊपर गन्दगी फैला रहा है; इसे साफ करने का काम स्वयं मज़दूर वर्ग को ही उठाना है, अपनी क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनें खड़ी करके, क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण करके और आनेवाली मज़दूर क्रान्ति को सम्पन्न करके।

– अमित

महाराष्ट्र विधानसभा चुनावों का रियलिटी शो

मुम्बई की फ़िल्म इण्डस्ट्री कई दशकों से लोगों का मनोरंजन करती आ रही है लेकिन पिछले कुछ दिनों में यह काम महाराष्ट्र के चुनावी नेताओं ने अपने कन्धो पर ले लिया है। 2014 के विधानसभा चुनावों ने अब तक महाराष्ट्र की जनता का कॉमेडी फ़िल्मों से भी अधिक मनोरंजन किया है। चुनावी मौसम शुरू होते ही जो मनोरंजन का सिलसिला शुरू हुआ था वह अभी तक लगातार जारी है। हिन्दुत्ववाद की तारणहार पार्टियों भाजपा व शिवसेना ने लम्बे समय तक जनता और अपने " निष्ठावान" कार्यकर्ताओं को लटकाये रखने के बाद अलग होने का फ़ैसला किया। दूसरी तरफ़ "सेक्युलिरज़्म" के समर्थक और "धर्मान्धता" की विरोधक पार्टियों कांग्रेस व राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी ने भी अकेले ही सत्ता प्राप्त करने का ध्येय सामने रखते हुए चुनाव लड़ने का फ़ैसला किया। साथ ही "दलित मुक्ति" के लिए शिवशक्ति और भीमशक्ति की एकता का नारा देने वाले सांसद रामदास आठवले ने नमक का क़र्ज़ अदा करते हुए भाजपा के साथ जाने का निर्णय लिया। इसके बाद सभी पार्टियों के पोस्टर व होर्डिंग जगह-जगह नज़र आने लगे जो लम्बे समय से छपनेकी प्रतीक्षा में थे। मोदी के प्रचार अभियान से सीख लेते हुए सभी पार्टियों ने मोदी की ही तर्ज़ पर चमकदार विज्ञापनों और नारों की बाढ़ ला दी। एक तरफ़ भाजपा 'कुठं नेऊन ठेवलाय माझा महाराष्ट्र' (कहाँ लाकर रख दिया है मेरा महाराष्ट्र) का नारा लगाकर जनता का ख़ून खौलाने की कोशिश कर रही थी तो दूसरी तरफ़ 'माझे प्रत्येक मिनिट महाराष्ट्रासाठी' (मेरा हर मिनट महाराष्ट्र के लिए) कहते हुए स्वयं मुख्यमन्त्री पृथ्वीराज चव्हाण अपने अभिनय के गुण दिखा रहे थे। इन विज्ञापनों को लेकर व्हाट्सअप और फ़ेसबुक पर चुटकुलों की बाढ़ आ गयी थी जो अभी तक थम नहीं पायी है।

ऐसे गर्माये हुए माहौल में अन्त में भाजपा 122 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी के तौर पर उभरी। साथ ही शिवसेना को 63, कांग्रेस को 42, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी को 41, बहुजन विकास पार्टी और शेतकरी कामगार पार्टी को 3-3, मज़दूरों के हक़ों को "समर्पित" माकपा,"मराठी माणुस" की राजनीति करने वाली राज ठाकरे की मनसे, समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय समाज पार्टी, भारिप बहुजन महासंघ, प्रत्येक को 1-1 सीट मिली। 7 सीटें निर्दलीय उम्मीदवारों को मिली। ए.आई.एम. आई.एम. को मिली 2 सीटों और अन्य जगहों पर इसे मिली वोटों की संख्या ने कईयों को हैरान किया। मोदी की लहर के चलते किसी ने भी अपेक्षा नहीं की थी कि इस लहर की प्रतिक्रियास्वरूप ओवैसी ब्रदर्स की पार्टी को इतना समर्थन मिलेगा। प्रसार माध्यमों के द्वारा खड़े किये गये लव ज़िहाद के हौव्वे और मुम्बई के कुछ मुस्लिम युवकों के इस्लामिक स्टेट में शामिल होने की ख़बरों के बीच इस पार्टी के उदय का हिन्दुत्ववादी ताक़तें किस तरह से अपने राजनीतिक हितों के लिएइस्तेमाल करेंगी यह आने वाला समय ही बतायेगा।

चुनाव के नतीजों के बाद भाजपा ने मुख्यमन्त्री की कुर्सी के लिए देवेन्द्र फडनवीस को चुन लिया और इस तरह आर.एस.एस. की स्थापना जिस महाराष्ट्र में हुई उस राज्य के सर्वोच्च सत्ता स्थान पर नागपुर के एक "स्वंय सेवक" के पहुँचते ही (अपने ऊपर 22 बार दंगे भड़काने के आरोपों के चलते यह सबसे "काबिल" उम्मीदवार थे)पहले भाजपाई मुख्यमन्त्री के अभिनन्दन के होर्डि ग जगह-जगह लग गये। वानखेड़े स्टेडियम में हुए शपथ ग्रहण समारोह में देश के बड़े उद्योगपति, फिल्मी सितारों और हज़ारों अन्य आमन्त्रितों के बीच फडनवीस ने मुख्यमन्त्री पद की शपथ ग्रहण कर ली। (अन्धश्रद्धा निर्मूलत समिति के नरेन्द्र दाभोलकर की हत्या के घाव अभी ताज़े ही थे कि इस शपथ ग्रहण समारोह के मंच पर नाणिज के नरेन्द्र महाराज और ऐसे ही अन्य "महापुरुष बाबाओं" का आशीर्वाद देने के लिए उपस्थित होना कई लोगों को परेशान कर रहा था। इसपर स्पष्टीकरण देते हुए यह कहकर कि हमारा विरोध अन्धश्रद्धा को है श्रद्धा को नहीं, नये मुख्यमन्त्री ने अपनी धार्मिक नीति स्पष्ट कर दी है।) लेकिन 100 करोड़ रुपये ख़र्च करके हुए इस "राज्याभिषेक" के बाद भी यह लेख लिखे जाने तक यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि भाजपा शिवसेना के साथ गठबन्धन बनाकर बहुमत का आँकड़ा पार करेगी या फिर शरद पवार के भरोसे ही सरकार चलायेगी। इसके साथ ही ऐसी ख़बरें भी लोगों के कान लगातार खड़े कर रही हैं कि शिवसेना, कांग्रेस और राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी भी साथ मिलकर सरकार बना सकती हैं। इस तरह की फुसफुसाहट भी सुनायी देती है कि कर्नाटक के 'ऑपरेशन लोटस' की तरह यहाँ भी अन्य पार्टियों के विधायकों को ख़रीदकर (इस्तीफ़ा दिलवाकर और फिर अपनी सीटों पर लड़ाकर) भाजपा सरकार चला सकती है।

चुनाव से पहले, "मेरे विरोध में प्रचार करने के लिए ख़ुद प्रधानमन्त्री को आना पड़ रहा है, यही इनकी औक़ात है" कहने वाले पूर्व उपमुख्यमन्त्री आर.आर.पाटिल की पार्टी राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी ने चुनाव के नतीजे आने के बाद भाजपा को समर्थन देने का ऐलान किया है। तबसे शिवसेना का "शेर" मुसीबत में पड़ गया है और अब तक नहीं सँभल पाया है। जिन्हें मुख्यमन्त्री बना देखने की इच्छा सभी शिवसैनिक पाल रहे थे, वह उद्धव ठाकरे यह तय नहीं कर पा रहे हैं कि अपना "मराठी स्वाभिमान"बनाये रखें या भाजपा की पूँछ से लटककर सत्ता में हिस्सेदार बनें। पहले, "जहाँ सम्मान नहीं मिलता वहाँ क्यों जायें" कहने के बाद शपथ ग्रहण समारोह में उपस्थित होकर पहले तो उद्धव ठाकरे ने अपनी सहृदयता का परिचय दिया। उसके बाद एक तरफ़ विपक्ष में बैठने की दहाड़ लगा रहे हैं तो दूसरी तरफ़ भाजपा के साथ चर्चा जारी रखने की उदारता को भी वह छोड़ नहीं पा रहे हैं। इसी दौरान शिवसेना के सुरेश प्रभु को भाजपा ने कैबिनेट विस्तार के शपथ ग्रहण से एक घण्टा पहले भाजपा का सदस्य बनाकर और रेलवे मिनिस्ट्री देकर शिवसेना के जख्मों पर नमक छिड़कने का काम किया है। इससे बौखलायी शिवसेना कहने लगी कि भाजपा पहले यह स्पष्ट करे कि क्या वह राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के साथ सरकार बनायेगी या नहीं, तभी वह अपना निर्णय ले पायेगी। लेकिन साथ ही सत्ता में एक-तिहाई भागीदारी और अहम मन्त्रालयों के ख़्वाब देखने का लोभ भी वह नहीं छोड़ पा रही है। एकनाथ खड़से ने यह कहकर कि वह राज्य के हित के लिए कांग्रेस के अलावा किसी भी पार्टी से समर्थन ले सकते हैं, यह स्पष्ट कर दिया है कि जो पार्टी(राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी) भाजपा की नज़रों में सबसे भ्रष्ट पार्टी थी, उसका समर्थन लेने में भी उन्हें कोई समस्या नहीं है। कांग्रेस की तरफ़ से विपक्ष नेता के पद के लिए नामांकन भरे जाने पर शिवसेना ने धोबी का कुत्ता बन जाने के डर से एक तरफ़ सत्ता में भागीदारी के लिए चर्चा जारी रखते हुए दूसरी तरफ़ विपक्ष नेता के लिए एकनाथ शिन्दे का नामांकन भर दिया है।

चुनाव से पहले महाराष्ट्र की जनता के सामने यह विश्वास प्रकट करने वाले कि अगर जनता की इच्छा हो तो वह मुख्यमन्त्री के पद पर भी बैठ जायेंगे,राज ठाकरे चुनाव में केवल एक सीट मिलने के बाद अपना अस्तित्व बचाये रखने के लिए आजकल दलितों के विरुद्ध अत्याचार के "विरोध" में भी झण्डा उठाये फिर रहे हैं। 15 साल के बाद सत्ता हाथ से निकलने के बाद राकांपा और कांग्रेस के कुछ विधायक और नेता किसानों के "हक़ की लड़ाई"के लिए रास्ते पर उतरने की तैयारी कर रहे हैं। नयी सरकार अगर अकाल घोषित कर किसानों के लिए फसल का बीमा मंजूर नहीं करवाती तो "आन्दोलन" छेड़ने का इशारा उन्होंने दे दिया है।

शिवसेना का "प्रस्ताव" ठुकराने के बाद शरद पवार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह अपने नेताओं को जाँच से छुटकारा दिलाने के लिए नहीं बल्कि महाराष्ट्र की जनता को स्थिर सरकार देने के लिए भाजपा को समर्थन देने के लिए तैयार हैं! लेकिन इस सवाल पर कि ये समर्थन कब तक टिकेगा वह यह याद दिलाना नहीं भूलते कि इसका जवाब देने के लिए वह कोई ज्योतिषी नहीं हैं।

शिवसेना दहाड़ते हुए भाजपा की गोद में बैठ जायेगी या फिर भाजपा भ्रष्ट राकांपा के सहयोग से "स्थिर सरकार" बनायेगी? केवल 28 प्रतिशत लोगों की वोट पाने वाली पार्टी का मुख्यमन्त्री कब तक और किस तरह सरकार चलायेगा, यह तो आने वाला समय ही बतायेगा। इन चुनावों ने जनता का मनोरंजन तो ख़ूब किया ही है लेकिन एक बार फिर नग्न रूप में यह सामने ला दिया है कि अलग-अलग झण्डों और नारों वाली सभी चुनावी पार्टियों की न तो किसी विचारधारा के प्रति कोई निष्ठा है और न ही जनता के प्रति कोई सरोकार। सत्ता का फल चखना ही सभी चुनावी पार्टियों का एकमात्र मकसद है। 88 फ़ीसदी करोड़पति विधायकों और 165 आपराधिक पृष्ठभूमि से आने वाले विधायकों से क्या उम्मीद की जा सकती है यह जनता को ही तय करना पड़ेगा।

- नारायण

विधानसभा चुनाव के बाद हरियाणा में भी "अच्छे दिनों" की शुरुआत

केन्द्र के बाद अब हरियाणा प्रदेश में भी "अच्छे दिनों" की शुरुआत हो ही गयी। क्योंकि देश के बाद अब राज्य में भी भाजपा की सरकार बन चुकी है। भाजपा के "पुराने दिग्गज" हाथ मलते रह गये जब 'आर.एस.एस.' के लाड़ले मनोहर लाल खट्टर अपनी 33 साल तक की संघ की सेवा का मेवा मुख्यमन्त्री पद के रूप में ले उड़े। कुर्सी-सत्ता की चूहा-दौड़ में तमाम पार्टियों और उनके "बाग़ी नेताओं" ने बढ़-चढ़कर चुनावी खेल खेला। चुनावी नौटंकी में सोनिया गाँधी की पालकी ढोने वाले विरेन्द्र सिंह जैसे लोग अपने झाँझ-मंजीरे लेकर भाजपा खेमे की तरफ़ कूद गये। पूँजीवादी राजनीति की गटर-गंगा के कई घाटों का पानी पी चुके और गीतिका शर्मा यौन-शोषण के आरोपी गोपाल काण्डा भी 'हरियाणा लोकहित पार्टी' बनाकर अपनी गोटियाँ सैट करने के चक्कर में थे। अब पता नहीं हरियाणा के लोगों का ये महोदय कौन सा हित करने वाले थे। ख़ूब पैसा बहाकर भी इन्हें निराशा ही हाथ लगी। हरियाणा में कभी बंसीलाल की 'हरियाणा विकास पार्टी' की पूँछ पकड़कर चलने वाली भाजपा ने कुलदीप बिश्नोई की 'हजका' का भी बैसाखी के समान इस्तेमाल किया और अभी हाल में हुए विधानसभा चुनाव में कुल डाले गये वोटों का करीब 33 प्रतिशत हासिल करके स्पष्ट बहुमत के साथ सरकार बना ली। हर चुनाव की तरह इस बार भी धनबल-बाहुबल का ख़ूब इस्तेमाल किया गया, लोगों के सामने विकास के झूठे नारों और वायदों का पिटारा खोल दिया गया, जाति-धर्म-क्षेत्र के नाम पर होने वाली राजनीति में जनता के बुनियादी मसले हवा होते नज़र आये। कुर्सी और पद के लालच में नेता लोग बरसाती मेढकों की तरह कभी इस तो कभी उस पार्टी में उछलते दिखायी दिये। चुने गये विधायकों में से 83 प्रतिशत करोड़पति हैं तथा 10 प्रतिशत पर आपराधिक मामले दर्ज हैं। करोड़पति और आपराधिक पृष्ठभूमि वाले विधायकों के प्रतिशत में "राष्ट्रवाद, देशभक्ति और सादगी-सदाचार" का ढोल पीटने वाली भाजपा सबसे आगे है।

हरियाणा और महाराष्ट्र के चुनाव से यह स्पष्ट हो गया है कि लोगों के दिलो-दिमाग़ से मोदी का खुमार अभी नहीं उतर पाया है। इस चुनावी बुखार के लिए एक तरफ़ जहाँ कांग्रेस नीत यूपीए सरकार की लुटेरी नीतियाँ ज़िम्मेदार थीं, वहीं देश के तथाकथित लोकतन्त्र के चौथे खम्बे मीडिया ने भी अपनी भूमिका बख़ूबी निभायी। तमाम समाचार चैनलों के संवाददाता और अख़बारों के पत्रकार देखने में भाजपा कार्यकर्ता अधिक नज़र आये। डेरों और बाबाओं का वैसे ही भाजपा के साथ साम्य बैठता है किन्तु कहीं-कहीं पर बाँह मरोड़ने का काम भी हुआ ताकि इन धार्मिक डेरों का वोट बैंक हथियाया जा सके, उदाहरण के लिए डेरा सच्चा सौदा जिसके "गुरु" से अमित शाह ने चुनाव के अन्तिम समय में "मुलाक़ात" की और इन्हें "सहमत" किया। हो सकता है, बाबा भी आसाराम बनने से घबरा रहे हों। अच्छे दिनों का तुमार तो बाँधा ही गया, साथ ही हरियाणा की जाट बैल्ट में साम्प्रदायिकता के मुद्दे को लगातार उभारने की कोशिश की गयी। मेवात में पहले ही दंगा हो चुका था। चुनावी वायदे करके पलटने में वैसे तो सभी दल एक ही थाली के चट्टे-बट्टे हैं लेकिन भाजपा अपनी नंगई तुरन्त बेपर्द कर देती है। केन्द्र में चाहे काले धन को लाना हो, एफ़डीआई को न लाना हो या फिर जनता के बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी जैसे मुद्दे हों, या फिर हरियाणा में रोज़गार, पेंशन और नये वेतनाम के मुद्दे हों; बड़ी ही बेशर्मी से इन सभी से मुँह चुराकर भाजपा सरकार हवा-हवाई योजनाओं की आड़ में जन-विरोधी नीतियाँ लागू करने में पूरी तरह मग्न है।

अच्छे दिन यदि किसी के लिए आये हैं तो वह है देश का पूँजीपति वर्ग। जनता से जुड़े मसलों पर कोई ठोस काम किये बिना 'स्वच्छ भारत अभियान', 'जन-धन योजना', 'आदर्श ग्राम योजना' आदि जैसी लोकरंजक और हवा-हवाई योजनाओं के साथ-साथ साम्प्रदायिक आधार पर जनता को बाँटने के फ़ार्मूले पर भी ख़ूब काम हो रहा है। सत्ता में आते ही पहले आम बजट में पूँजीपतियों को 5.32 लाख करोड़ की प्रत्यक्ष छूट और कर माफ़ी मिली है। स्वदेशी का नगाड़ा बजाने वाली और 'प्रत्यक्ष विदेशी निवेश' (एफ़डीआई) के मुद्दे पर रुदालियों की तरह छाती पीटने वाली भाजपा विदेशी पूँजीपतियों के लिए रेलवे, बीमा और

(पेज 14 पर आगे)

आधी आबादी की भागीदारी के बिना मज़दूर वर्ग की मुक्ति असम्भव है

भारत में पुरुष मज़दूरों की तुलना में महिला मज़दूरों की संख्या काफ़ी कम है। नयी सरकार ने हाल ही में श्रम क़ानूनों में संशोधन के तहत कुछ ऐसे प्रावधान शामिल किये हैं जिससे महिला मज़दूरों की संख्या को बढ़ाया जा सके। कारख़ाना अधिनियम, 1948 के तहत पहले जहाँ महिला मज़दूर कारख़ानों में सुबह 6 बजे से शाम 7 बजे तक ही काम कर सकती थीं, वहीं इसमें बदलाव करके महिला मज़दूरों के लिए रात की पालियों में काम करने का प्रावधान शामिल किया गया है। हालाँकि रात की पालियों के दौरान महिला मज़दूरों की सुरक्षा पर सरकार बिल्कुल मौन है। कारख़ानों में रात की पालियों में काम करने के लिए महिलाओं को अपने रिहाइश के इलाक़ों से फ़ैक्टरी तक सुरक्षित छोड़ने व वापस पहुँचाने की ज़िम्मेदारी सरकार के एजेण्डा में कहीं नज़र नहीं आती। आख़िर हो भी क्यों! पूँजीपतियों की चाकरी बजाने वाली किसी भी सरकार के लिए महिला मज़दूरों की सुरक्षा का मुद्दा न तो पहले कभी प्राथमिकता में था न ही आने वाले समय में होने वाला है।

बहरहाल, नयी सरकार ने लैंगिक समानता को सुनिश्चित करने का तर्क देकर महिला मज़दूरों के लिए कारख़ानों में अब रात की पालियों में भी काम करने का प्रावधान शामिल किया है। लेकिन सवाल तो यह है कि क्या सरकार लैंगिक असमानता को लेकर वाकई चिन्तित है या उसकी चिन्ता का सबब कुछ और ही है। वर्ष 2007 से ही दुनिया के तमाम मुल्क जिस आर्थिक मन्दी का शिकार हैं, उससे निजात पाने के लिए दुनिया भर के शासक द्रविड़ प्राणायाम करने में लगे हुए हैं और पूँजी निवेश के नये-नये अवसरों की खोज में यहाँ-वहाँ भटक रहे हैं। भारत में भी देशी-विदेशी पूँजी को बढ़ावा देने की कवायदें चल रही हैं। पूँजी निवेश के रास्ते में आने वाली सारी बाधाओं को किनारे लगाया जा रहा है। हाल ही में श्रम क़ानूनों में हुए संशोधन इसी का ही हिस्सा हैं। नयी सरकार देशी-विदेशी पूँजी को समस्त मज़दूरों की मेहनत को और अधिक तेज़ी से लूटने के अवसर तो दे ही रही है, साथ ही स्त्रियों की सस्ती श्रमशक्ति को पहले से ज़्यादा संख्या में मुहैया कराने के लिहाज़ से "आर्थिक विकास में महिलाओं की भागीदारी", "लैंगिक समानता" जैसी लफ़्फ़ाज़ी के ज़रिये भ्रम फैला रही है।

चूँकि महिलाओं की श्रमशक्ति सस्ती क़ीमत पर उपलब्ध होती है, इसलिए पूँजीवाद अपने मुनाफ़े की दरों को बढ़ाने के लिए महिलाओं को घर की चौहद्दियों से निकालकर कारख़ानों का हिस्सा बनाता है। पूँजीवाद महिलाओं की मुक्ति के नज़रिये से नहीं बल्कि पूँजी के हितों की रक्षा के लिए यह क़दम उठाता है। हालाँकि पूँजीवाद द्वारा उठाये गये इस क़दम की तार्किक परिणति यह होती है कि वह महिलाओं को उजरती श्रम का हिस्सा बनाकर मज़दूर वर्ग की ताक़त को बढ़ाता है। यही मज़दूर वर्ग पूँजीवाद की कब्र खोदने का काम करता है। इस लिहाज़ से देखा जाये तो महिलाओं का घर की चौहद्दियों से बाहर निकलकर सामूहिक उत्पादन जगत का हिस्सा बनना एक सकारात्मक क़दम है।

हालाँकि आज की सच्चाई यह है कि भारत के श्रम बाज़ार में महिलाओं की भागीदारी बेहद कम है। वर्ष 2013 में अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) द्वारा जारी एक रिपोर्ट के मुताबिक़ श्रम बाज़ार में महिलाओं की भागीदारी के लिहाज़ से 131 देशों में भारत का 120वाँ स्थान है। केन्द्रीय सांख्यिकी विभाग, भारत सरकार के अनुसार वर्ष 2000-01 से 2009-10 के बीच मैन्युफ़ैक्चरिंग क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी मात्र 20 प्रतिशत थी। यही नहीं, जहाँ कहीं भी महिलाओं की श्रम बाज़ार में कोई भागीदारी है वहाँ पर उन्हें पुरुषों के मुकाबले बेहद कम मज़दूरी मिलती है। केन्द्रीय सांख्यिकी विभाग के ही अनुसार वर्ष 2009-10 में मैन्युफ़ैक्चरिंग क्षेत्र में जहाँ पुरुष मज़दूरों की औसत दैनिक मज़दूरी 303 रुपये थी, वहीं महिला मज़दूरों की औसत दैनिक मज़दूरी मात्र 147 रुपये ही थी। हालाँकि भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था के "पवितत्रतम" ग्रन्थ यानी भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 के अनुसार स्त्रियों और पुरुषों को समान काम के लिए समान वेतन मुहैया कराने की ज़िम्मेदारी भारतीय राज्य व्यवस्था की है, इसके बावजूद आलम यह है कि यह कहीं भी लागू नहीं होता। स्त्री-पुरुष मज़दूरों के बीच मौजूद वेतन की यह असमानता पूँजीवाद का आम नियम है। अत: इसे सिर्फ़ क़ानून बनाकर बदलने का ख़्वाब दिखाना असल में महिला मज़दूरों की आँखों में धूल झोंकने की एक घिनौनी चाल है। पूँजीवाद के रहते इस असमानता को ख़त्म किया ही नहीं जा सकता है। पूँजीपति अपने मुनाफ़े की दर को अप्रत्याशित तौर पर बढ़ाने के लिए स्त्रियों की सस्ती श्रमशक्ति का भी जमकर इस्तेमाल करते हैं। स्त्रियों की सस्ती श्रमशक्ति का बने रहना तो उनके लिए एक वरदान है।

इधर हाल के वर्षों में एक नयी परिघटना सामने आ रही है। कृषि में पूँजी की पैठ के कारण ग़रीब किसान लगातार अपनी ज़मीन से उजड़ रहे हैं। यही कारण है कि कृषि में कामगारों की भागीदारी की दर में कमी आ रही है और मैन्युफ़ैक्चरिंग क्षेत्र में इस दर में बढ़ोतरी हो रही है। यही प्रवृत्ति महिला कामगारों में भी दिखलायी दे रही है। नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के 68वें चक्र की सर्वे रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1999-2000 में जहाँ कृषि में महिला कामगारों की भागीदारी की दर 76.3 प्रतिशत थी, वहीं 2011-12 में यह दर 62.8 प्रतिशत रह गयी। दूसरी तरफ़, औद्योगिक क्षेत्र में महिला कामगारों की भागीदारी 11.7 प्रतिशत से बढ़कर 20 प्रतिशत हो गयी। हालाँकि औद्योगिक क्षेत्र में महिला मज़दूरों की संख्या में होने वाली इस बढ़ोतरी का अधिकांश भाग अनौपचारिक प्रकृति का है जिसके कारण ये मज़दूर किसी भी क़िस्म की सामाजिक सुरक्षा के प्रावधानों से वंचित रह जाते हैं। ग़ौरतलब है कि एनएसएसओ की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2009-10 से 2011-12 के बीच औद्योगिक क्षेत्र में 1 करोड़ 72 लाख रोज़गारों का सृजन हुआ जिसमें से 85 प्रतिशत रोज़गार अनौपचारिक प्रकृति के थे।

जैसा कि पहले ही कहा गया है कि घर की चौखटों से निकलकर सामाजिक उत्पादन की दुनिया से स्त्रियों का जुड़ना एक सकारात्मक क़दम है। पर मज़दूर परिवारों में मौजूद पुरुष वर्चस्व की मानसिकता अकसर ही इस प्रक्रिया को बाधित करती है। पुरुष मज़दूर अपनी स्त्रियों के कारख़ाने में जाकर काम करने के पक्ष में नहीं होते हैं। ऐसे में अनजाने में ही वे पूँजी के विरुद्ध मज़दूर वर्ग के संघर्ष को कमज़ोर करने का काम कर डालते हैं। स्त्रियों का उजरती श्रमिकों की पाँतों में शामिल होना मज़दूर वर्ग की शक्ति को बढ़ाकर उजरती गुलामी से पूरे मज़दूर वर्ग की मुक्ति का आधार तो तैयार करता ही है, साथ ही साथ यह पितृसत्ता के ख़िलाफ़ स्त्रियों की मुक्ति का पूर्वाधार भी तैयार करता है। आधी आबादी की भागीदारी के बिना पूँजी की ताक़त से मुक़ाबला करना असम्भव है। पुरुष मज़दूरों को समझना होगा कि पूँजी और श्रम के महासमर में महिला मज़दूर उनकी सहयोद्धा होंगी। उनके बिना किसी भी संघर्ष को जीतने की कल्पना नहीं की जा सकती है।

– श्वेता

घरेलू कामगार स्त्रियाँ : हक से वंचित एक बड़ी आबादी

घरों में काम करने वाली महिलाओं, लड़कियों पर अत्याचार, शोषण की घटनाएँ हमें आये दिन देखने और सुनने को मिलता है। मध्यवर्गीय परिवारों, नौकरीशुदा स्त्रियों के घरों में घरेलू काम में "सहायक" के तौर पर काम करने वाली रखी जाती हैं। अपनी जीविका चलाने के लिए ये दूसरों के घरों में काम करने के लिए मजबूर हैं। उनका सिर्फ आर्थिक शोषण ही नहीं होता। उनके साथ होने वाली हिंसा, यौन शोषण, दुर्व्यवहार, अमानवीयता की ख़बरें जितनी सामने आती हैं, उससे सैकड़ों गुना ज़्यादा वास्तव में होती हैं।

देश में लाखों घरेलू कामगार स्त्रियों के श्रम को पूरी तरह से अनदेखा किया जाता है। हमारी अर्थव्यवस्था के भीतर घरेलू काम और उनमें सहायक के तौर पर लगे लोगों के काम को बेनाम और न दिखाई पड़ने वाला, गैर उत्पादक की श्रेणी में रखा जाता है। सदियों से चली आ रही मान्यता के तहत आज भी घरेलू काम करने वालों को नौकर/नौकरानी का दर्जा दिया जाता है। उसे एक ऐसा व्यक्ति माना जाता है जो मूल कार्य नहीं करता बल्कि मूल कार्य पूरा करने में किन्हीं तरीकों से मदद करता है। इस वजह से उनका कोई वाजिब मेहनताना ही तय नहीं होता। मालिकों की मर्ज़ी से बख्शीश ज़रूर दी जाती है। यह मनमर्ज़ी का मामला होता है अधिकार का नहीं। मन हुआ या खुश हुए तो ज़्यादा दे दिया और नहीं तो बासी सड़ा भोजन, फटे-पुराने कपड़े, जूते, चप्पल दे दिया जाता है। देश की अर्थव्यवस्था में घरेलू कामगारों के योगदान का कभी कोई आकलन नहीं किया जाता। उल्टे इनको आलसी, कामचोर, बेईमान, गैर-ज़िम्मेदार और फायदा उठाने वाला समझा जाता है।

घरों में काम करने वाली महिलाओं की श्रमशक्ति की एक बड़ी आबादी बिना कामगार का दर्जा पाये काम करने के लिए मजबूर है। काम से जुड़े उनके अधिकारों की सुरक्षा के लिए कोई भी क़ानून नहीं है और जो भी थोड़ा-बहुत है भी तो वह लागू नहीं होता। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के अनुसार जीविका के लिए भारत में दूसरे घरों में काम करने वाली महिलाओं की संख्या एक करोड़ के आसपास है। इनकी संख्या देश में तेजी से बढ़ रही है। संयुक्त परिवार खत्म हो रहे हैं। एक व्यक्ति की आय से घर चलाना मुश्किल होता जा रहा है, पति-पत्नी दोनों के ही बाहर काम करने की वजह से बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल के लिए परिवार के सदस्य मौजूद नहीं होते। ऐसे में इनकी देखभाल के लिए भी घरेलू कामगारों को काम पर रखने की ज़रूरत पड़ती है। और मध्यवर्ग का एक तबका ऐसा भी है जिन्हें अपने स्टेट्स सिंबल और अपनी काहिली की वजह से भी इन्हें काम पर लगाना होता है।

नौकर नहीं कामगार का दर्जा मिलना चाहिए

कामगार होने के बावजूद औपचारिक रूप से क़ानूनी हक से वंचित श्रमशक्ति की यह बड़ी संख्या कई चुनौतियों को झेल रही है। संगठन के अभाव में इनकी माँगें सार्वजनिक नहीं हो पातीं। काम के लिए मोलभाव करने की ख़ास ताकत अगर कामगार होने की एक पहचान है तो यह इस ताकत से भी वंचित हैं। काम के दौरान जोखिम से गुज़रती इन स्त्रियों को अपने काम से जुड़ी क़ानूनी सुरक्षा, छुट्टी, मातृत्व अवकाश, बच्चों का पालनाघर, बीमारी की दशा में उपचार जैसी कोई सुविधा हासिल नहीं हो पाती।

क़ानूनी सुरक्षा के अभाव में 6 से 10-12 घण्टे तक खटते हुए वह जीविका की असुरक्षा से भी गुजरती हैं। इतना ही नहीं ये स्त्रियाँ ज़्यादातर आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े और वंचित समुदाय की होती हैं। उनकी यह सामाजिक हैसियत उनके लिए और भी अपमानजनक स्थितियाँ पैदा कर देती है। यौन उत्पीड़न, चोरी का आरोप, गालियों की बौछार या घर के अन्दर शौचालय आदि का प्रयोग न करने देना एक आम बात है।

घरेलू कामगारों की हितों की सुरक्षा के लिए कई साल पहले सरकारी और गैरसरकारी संगठनों ने मिलकर 'घरेलू कामगार विधेयक' का ख़ाका बनाया था। इस विधेयक पर राष्ट्रीय महिला आयोग ने अपनी स्वीकृति देकर सरकार के पास भेज दिया था पर अब तक इस पर कोई कार्रवाई नहीं हुई। महिलाओं के लिए संसद में 33 प्रतिशत आरक्षण के लिए हर साल होहल्ला मचाने वाली पार्टियों ने इतनी बड़ी आबादी को बुनियादी अधिकार दिलाने वाले इस विधेयक को पारित करने के सवाल पर कभी कोई आवाज़ नहीं उठायी। इस विधेयक में कामगार का दर्जा देने के लिए एक परिभाषा प्रस्तावित की गयी है - "ऐसा कोई भी बाहरी व्यक्ति जो पैसे के लिए या किसी भी रूप में किये जाने वाले भुगतान के बदल किसी घर में सीधे या एजेंसी के माध्यम से जाता है तो स्थायी/अस्थायी, अंशकालिक या पूर्णकालिक हो तो भी उसे घरेलू कामगार की श्रेणी में रखा जायेगा।" इसमें उनके वेतन, साप्ताहिक छुट्टी, सामाजिक सुरक्षा आदि का प्रावधान किया गया है। महाराष्ट्र और केरल जैसे कुछ राज्यों में घरेलू कामगारों के लिए क़ानून बनने से उनकी स्थिति में एक हद तक सुधार हुआ है। लेकिन बाकी राज्यों में अभी कोई क़ानून नहीं है।

अगर क़ानून बनेगा तो घरेलू कामगारों के लिए न्यूनतम मज़दूरी का भी सवाल उठेगा इसलिए सरकार इस ओर कोई ध्यान नहीं दे रही है। इनकी सुरक्षा और न्यूनतम मज़दूरी को सुनिश्चित करने के लिए क़ानून बनना तो तात्कालिक समाधान है। घरेलू कामगारों को अपने हक़ की लड़ाई के लिए संगठित होना होगा और मज़दूरों के व्यापक संघर्ष के साथ अपने को जोड़ना होगा। उनकी वास्तविक मुक्ति तो तभी सम्भव होगी जब एक ऐसा समाज बनेगा जिसमें मालिक और नौकर का भेद ही ख़त्म हो जायेगा।

– शाकम्भरी

जॉयनवादी इज़रायली हत्यारों के संग मोदी सरकार की गलबहियाँ

पिछली जुलाई में जब इज़रायल गाज़ा में बर्बर नरसंहार को अंजाम दे रहा था, मोदी सरकार ने संसद में इस अहम मसले पर बहस करवाने से साफ़ इन्कार कर दिया था। विदेश मन्त्री सुषमा स्वराज ने उस समय यह बयान दिया था कि इज़रायल और फिलिस्तीन दोनों ही भारत के मित्र हैं और संसद में उस मसले पर किसी प्रकार की बहस से इन दोनों देशों से भारत के राजनयिक सम्बन्धों पर प्रतिकूल असर पड़ता। पिछले 3 महीने के दौरान मोदी सरकार द्वारा रक्षा के क्षेत्र में लिये गये अहम फ़ैसलों से अब यह दिन के उजाले की तरह साफ़ होता जा रहा है कि फिलिस्तीन से मित्रता की बात तो बस जुबानी जमा ख़र्च थी, मोदी सरकार की असली मित्रता तो इज़रायल से है। सितम्बर के महीने में नरेन्द्र मोदी की अमेरिका यात्रा के दौरान उनकी इज़रायली प्रधानमन्त्री बेंजामिन नेतन्याहू से गर्मजोशी भरा मुलाक़ात, भारत द्वारा इज़रायली सैन्य उपकरणों की ख़रीद की मंजूरी और गृहमन्त्री राजनाथ सिंह की हालिया इज़रायल यात्रा ने इस बात के पर्याप्त संकेत दे दिये हैं कि आने वाले दिनों में हिन्दुत्ववादियों और जॉयनवादियों का ख़ूनी गठजोड़ परवान चढ़ेगा।

हालाँकि पिछले दो दशकों में सभी पार्टियों की सरकारों ने इज़रायली नरभक्षियों द्वारा मानवता के ख़िलाफ़ अपराध को नज़रअन्दाज़ करते हुए उनके आगे दोस्ती का हाथ बढ़ाया है, लेकिन हिन्दुत्ववादी भाजपा की सरकार का इन जॉयनवादी अपराधियों से कुछ विशेष ही भाईचारा देखने में आता है। अटलबिहारी वाजपेयी के कार्यकाल के दौरान भी भारत और इज़रायल के सम्बन्धों में ज़बरदस्त उछाल आया था और अब नरेन्द्र मोदी के सत्ता में आने के बाद एक बार फिर इस प्रगाढ़ता को आसानी से देखा जा सकता है। नरेन्द्र मोदी और बेंजामिन नेतन्याहू दोनों के ख़ूनी रिकॉर्ड को देखते हुए ऐसा लगता है, मानो ये दोनों एक-दूसरे के नैसर्गिक जोड़ीदार हैं। इस जोड़ी की गर्मजोशी भरी मुलाक़ात सितम्बर में संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली की बैठक के दौरान न्यूयॉर्क में हुई जिसमें नेतन्याहू ने मोदी को जल्द से जल्द इज़रायल आने का न्योता दिया जिसे मोदी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। नेतन्याहू ने यह भी बयान दिया कि "हम भारत से मज़बूत रिश्ते की सम्भावनाओं को लेकर रोमांचित हैं और इसकी सीमा आकाश है।" इज़रायली मीडिया ने नेतन्याहू-मोदी की इस मुलाक़ात को प्रमुखता से जगह दी।

सितम्बर के ही महीने में प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता वाली सुरक्षा मामलों की कैबिनेट कमेटी ने इज़रायल की 262 बराक मिसाइलों की ख़रीद को हरी झण्डी दे दी। ग़ौरतलब है कि इन्हीं बराक मिसाइलों की ख़रीद को लेकर 2001 में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार के समय में ही एक घोटाला सामने आया था जिसमें तत्कालीन रक्षामन्त्री जार्ज फ़र्नाण्डीज़, उनकी सहयोगी जया जेटली और नौसेना के एक अधिकारी सुरेश नन्दा का नाम सामने आया था। इस घोटाले में एनडीए के एक घटक समता पार्टी के पूर्व कोषाध्यक्ष आर के जैन को गिरफ़्तार भी किया गया था। लेकिन अब मोदी सरकार ने इज़रायल से अपनी मित्रता का सबूत देते हुए एक बार फिर से इस सौदे को मंजूरी दे दी है।

ग़ौरतलब है कि भारत पहले ही इज़रायल के रक्षा उपकरणों का सबसे बड़ा आयातक देश और इज़रायल भारत का दूसरा सबसे बड़ा हथियारों का सप्लायर बन चुका है। अभी पिछले ही वर्ष कांग्रेस नीत संप्रग सरकार ने 15 हेरॉन ड्रोन की ख़रीद को मंजूरी दी थी। मोदी-नेतन्याहू मुलाक़ात के बाद अक्टूबर में रक्षा अधिग्रहण परिषद ने 80,000 करोड़ रुपये की रक्षा परियोजनाओं को मंजूरी दी। इसमें से 50,000 करोड़ रुपये नौसेना के लिए छह पनडुब्बियों के निर्माण में ख़र्च किये जायेंगे। 3,200 करोड़ रुपये 8000 इज़रायली टैंकरोधी मिसाइल स्पाइक की ख़रीद में ख़र्च किये जायेंगे। ग़ौर करने वाली बात यह है कि भारत ने इज़रायल की इस मिसाइल को अमेरिका की जैवेलिन मिसाइल के ऊपर तवज्जो दी है जिसके लिए अमेरिका लम्बे समय से लॉबिंग कर रहा था। अमेरिकी रक्षा मन्त्री चक हेगल ने अपनी हालिया भारत यात्रा के दौरान भी इस मिसाइल को भारत को बेचने के लिए लॉबिंग की थी। लेकिन अमेरिकी मिसाइल के ऊपर इज़रायली मिसाइल को तवज्जो देना हिन्दुत्ववादियों के इज़रायली जॉयनवादियों से गहरे रिश्तों को उजागर करता है। इज़रायल भविष्य में अपने इरॉन डोम नामक मिसाइल रोधी प्रणाली को भी भारत को बेचने की फ़िराक़ में है।

नवम्बर की शुरुआत में गृहमन्त्री राजनाथ सिंह ने इज़रायल की यात्रा की। यह वर्ष 2000 के बाद किसी भारतीय गृहमन्त्री की पहली इज़रायल यात्रा थी। इस यात्रा के दौरान राजनाथ सिंह ने इज़रायली रक्षा कम्पनियों को 'मेक इन इण्डिया' मुहिम के तहत भारत में निवेश करने का न्योता दिया। इज़रायली रक्षा मन्त्री मोशे यालोन से मुलाक़ात के दौरान राजनाथ सिंह ने रक्षा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में रियायत देने के मोदी सरकार के फ़ैसले को विशेष तौर पर रेखांकित किया। इज़रायली रक्षा मन्त्री ने अपनी ओर से रक्षा के क्षेत्र में भारत को अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी हस्तान्तरित करने की मंशा जतायी। इस यात्रा के दौरान राजनाथ सिंह ने गाज़ा की सीमा पर इज़रायली सैनिक चौकियों का दौरा भी किया। अधिकारियों का कहना है कि राजनाथ सिंह इज़रायल द्वारा इस्तेमाल की जा रही अत्याधुनिक सीमा सुरक्षा की प्रौद्योगिकी से काफ़ी प्रभावित दिखे। इस प्रौद्योगिकी में उच्च गुणवत्ता वाली लम्बी रेंज वाले दिन के कैमरे और रात्रि प्रेक्षण प्रणाली शामिल है। इसके अतिरिक्त राजनाथ सिंह डिटेक्शन रडार से भी बहुत प्रभावित हुए जिसकी मदद से सीमा पार कई किलोमीटर तक की हलचल को आसानी से प्रेक्षित किया जा सकता है। यही नहीं गाज़ा की सीमा पर सुरंग बनाने के प्रयासों को निष्क्रिय करने के लिए सीज़्मिक प्रणाली वाले मोशन सेंसर से भी राजनाथ सिंह प्रभावित हुए। ज़ाहिर है कि इज़रायल भविष्य में इन सभी प्रौद्योगिकियों को भारत को बेचने की योजना बना रहा है और राजनाथ सिंह को एक सम्भावित ग्राहक के रूप में देखकर उसने इन प्रौद्योगिकियों की नुमाइश की। इतना तो तय है कि आने वाले दिनों में हिन्दुत्ववादियों और ज़ॉयनवादियों के इन रिश्तों में और प्रगाढ़ता आयेगी।

– आनन्द सिंह

दिल्ली के चुनाव में वोटों की फसल की कटाई से पहले दंगों की बुवाई

दिल्ली में विधानसभा चुनाव की तारीख़ जल्द ही घोषित होने वाली है। ऐसे में दिल्ली की जनता को भी साम्प्रदायिक आधार पर बाँटने की तैयारियाँ शुरू हो चुकी हैं। इस तैयारी में भगवा गिरोह के नेता हर बार की तरह सबसे आगे रहे हैं। चाहे पूर्वी दिल्ली के त्रिलोकपुरी इलाके को लिया जाये जहाँ दो शराबियों के झगड़े को साम्प्रदायिक दंगे में तब्दील कर दिया गया, चाहे उत्तर-पश्चिम दिल्ली के बवाना में हुई ''महापंचायत'' को लिया जाये जिसमें मोहर्रम के जुलूस को मुद्दा बनाकर साम्प्रदायिक टकराव की स्थिति पैदा की गयी, या फिर चाहे उत्तर-पूर्वी दिल्ली के नूर-ईलाही इलाके को लिया जाये जहाँ झूठी अफवाह फैलाकर साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने की कोशिश हुई; इन सभी घटनाओं में भाजपा व उसके मातृ संगठन आर.एस.एस. के लोगों की भूमिका साफ तौर पर थी। यही नहीं दिल्ली के अन्य इलाकों जैसे नन्दनगरी, खजूरी, मजनू का टीला, तीमारपुर आदि में भी साम्प्रदायिक माहौल बिगाड़ने की कोशिशें हुई। भगवा गिरोह लोकसभा चुनाव के दौरान किये गये साम्प्रदायिक दंगों के सफल प्रयोग को दिल्ली में भी अजमाना चाहता है। अन्य चुनावी पार्टियाँ भी वोट बैंक को मद्देनजर रखते हुए केवल नरम साम्प्रदायिक नपुंसकता के कार्ड को चुनावी फायदे के लिए ही इस्तेमाल कर रही हैं।

यह अनायास नहीं है कि देश की राजधानी दिल्ली में साम्प्रदायिक

तनाव पैदा करने की कोशिश हो रही हों। लोकसभा चुनाव से पहले हमने देखा कि किस तरह झूठी अफवाह फैलाकर मुजफ्फरनगर में दंगों का खूनी खेल खेला गया। उसके बाद तीन राज्यों के उपचुनाव से पहले भी दंगे कराये गये जिसमें अकेले उत्तर प्रदेश में ही 16 मई से 25 जुलाई के बीच 26 बड़े दंगों सहित 605 साम्प्रदायिक तनावों और झगड़ों की घटनाएँ हुई। हरियाणा और महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों से पहले भी 'लव-ज़िहाद' के फर्जी मुद्दे को झूठे तथ्यों के सहारे खूब प्रचारित करके वोटों के ध्रुवीकरण की साज़िश रची गयी। बकौल भाजपा के अध्यक्ष अमित शाह अगर साम्प्रदायिक तनाव बना रहता है तो भाजपा को सत्ता में आने से कोई नहीं रोक सकता। असल में चुनावी मदारियों के पास आज के समय जनता के बेरोजगारी, महँगाई, गरीबी व शिक्षा-चिकित्सा जैसे मुद्दों पर करने के लिए कोई बात नहीं रह गयी है। भाजपा की सरकार संघ गिरोह के सरगना के लिए फलने-फूलने का स्वर्णावसर लेकर आयी है। क्योंकि अब संघी गिरोह के लिए 'घर की बही और लिखने वाला चाचा' वाली कहावत एकदम फिट बैठ रही है। राम-मंदिर के मुद्दे के बाद संघ परिवार के लिए फिर से बसंत के दिन आ गये हैं।

अच्छे दिनों के ख्वाब दिखाकर भाजपा जैसे अच्छे दिन ला रही है ये अब किसी से छिपा नहीं है। 100 दिन में काला धन लाने और हरेक देशवासी को 3 लाख रुपये देने का दम भरने वाले दिग्गज अब काले धन के मुद्दे पर कांग्रेस की नौटंकी को भी पीछे छोड़ रहे हैं। एफ.डी.आई. के मुद्दे पर जिस भाजपा का राम वनवास के समय राजा दशरथ की तरह कलेजा फटा जाता था वह अब विदेशी पूँजीपतियों के लिए पलक-पाँवड़े बिछा चुकी है। केन्द्र सरकार ने 'स्वच्छता अभियान' की नौटंकी में और कुछ नहीं तो तमाम चुनावी वायदे बुहारकर कचरा पेटी के हवाले जरूर कर दिये हैं। असल में अच्छे दिन केवल पूँजीपतियों के लिए आये हैं, आम जनता को तो वही अमावस का अँधेरा नसीब हुआ है। 'श्रमेव जयते' की नामलेवा सरकार श्रम कानूनों को पूँजीपतियों के हित में संशोधित करने का विधेयक पहले ही पेश कर चुकी है। यानी अब श्रम कानूनों को ''लचीला'' बनाकर मज़दूरों के श्रम की लूट को कानूनी जामा पहनाने की तैयारी हो रही है। जनता के असली मुद्दों को नजरों से ओझल करके 'स्वच्छ भारत अभियान', 'आदर्श ग्राम योजना', 'जन-धन योजना' आदि जैसी लोकरंजक योजनाओं के साथ-साथ साम्प्रदायिक आधार पर लोगों को बाँटने की कोशिश भरपूर जारी है। इतिहास गवाह है कि जब-जब पूँजीवादी व्यवस्था मन्दी का शिकार होती है तो अलग-अलग रंगों के फासीवादी तारणहार बनकर सामने आते हैं। पूँजीपति अपने मुनाफ़े को बचाने के लिए इन्हीं फासीवादियों का सहारा लेते हैं। व्यवस्था का ढाँचागत संकट कहीं व्यवस्था का अन्तकारी संकट न बन जाये, मेहनतकश आबादी अपनी समस्याओं का कारण कहीं पूँजीवादी व्यवस्था में तलाश कर इसका अन्त करके सही विकल्प की तरफ न बढ़ जाये, इससे बचने के लिए शासक वर्ग फासीवादियों का जंजीर में बंधे कुत्ते की तरह इस्तेमाल करता है। देश के पूँजीपतियों ने अपने प्रधान सेवक के तौर पर मोदी को वैसे ही नहीं चुना है। हर हमेशा की तरह साम्प्रदायिक उभार के दौर में महँगाई, बेरोजगारी, ग़रीबी, शिक्षा और चिकित्सा जैसे मुद्दे कहीं पीछे छूट जाते हैं। यहीं पर जनता को धैर्य के साथ अपने विवेक से काम लेना होता है। देश के मज़दूर वर्ग को अपनी वर्गीय एकता को तोड़ने की किसी भी साज़िश का शिकार नहीं होना चाहिए। आज के समय हमें मजहबी पहचानों से ऊपर उठकर जुझारू वर्गीय एकजुटता कायम करनी होगी वरना हममें और भेड़ों के रेवड़ में कोई फर्क नहीं रह जायेगा। जब तक इस सड़ी हुई पूँजीवादी व्यवस्था का कारगर विकल्प नहीं खड़ा होगा तब तक कभी उदार मुखौटा लगाकर तो कभी फासीवाद के अपने नंगे रूप में यह व्यवस्था जनता को शिकार बनाती रहेगी। राजधानी में हो रही साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की साज़िश कोई नयी बात नहीं है बल्कि यह देश में पहले हो चुके दंगों में अगली कड़ी जोड़ने का प्रयास है साथ ही इससे पूँजीवादी व्यवस्था का नरभक्षी चरित्र भी बेपर्द हो जाता है।

– दिल्ली संवाददाता

ज़िन्दगी को बदलने की असली लड़ाई में लगने की पहली शर्त है सभी मेहनतकशों की अटूट एकता !

(पेज 1 से आगे)

नीतियों को बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से चलाना चाहते हैं। इसके लिये एक निरंकुश सत्ता की ज़रूरत है। इसलिए शासक वर्गों ने नरेन्द्र मोदी पर दाँव लगाया है। धार्मिक कट्टरपंथी फासीवाद के वर्तमान उभार का कारण नरेन्द्र मोदी नहीं है। नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में हिन्दुत्ववादी फासीवाद के आधुनिक संस्करण के उभार का कारण मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के असाध्य ढाँचागत संकट में है। इस पूँजीवादी संकट का एक क्रान्तिकारी समाधान हो सकता है और वह है, पूँजीवादी उत्पादन और विनिमय की तथा शासन की प्रणाली को ही जड़ से बदल देना। इस समाधान की दिशा में यदि समाज आगे नहीं बढ़ेगा तो पूँजीवादी संकट का फासीवादी समाधान ही सामने आयेगा जिसका अर्थ होगा, जनवादी प्रतिरोध के हर सीमित स्कोप को भी समाप्त करके मेहनतकश जनता पर पूँजी की नग्न-निरंकुश तानाशाही स्थापित करना। और फिलहाल यही विकल्प भारतीय पूँजीपति वर्ग ने चुन लिया है।

अतीत से सबक लेकर, भारतीय पूँजीपति वर्ग फासीवाद को नियंत्रित रखते हुए उसी हद तक इस्तेमाल करना चाहता है कि वह जन-प्रतिरोध को कुचल सके, जनता की वर्ग चेतना को कुन्द कर सके और बेरोकटोक मेहनतकश जनता से मुनाफ़ा निचोड़ सके। पर स्थितियाँ उसके नियंत्रण में रहे, यह ज़रूरी नहीं। ढाँचे की गति हमेशा शासक वर्ग की इच्छा से नहीं तय होती। शासक वर्ग फासीवाद को ज़ंजीर में बँधे शिकारी कुत्ते की तरह इस्तेमाल करना चाहते हैं जिससे जनता को डराया जा सके और काम हो जाने पर वापस खींचा जा सके। लेकिन कुत्ता ज़ंजीर छुड़ाकर स्वतंत्र भी हो सकता है। उग्र साम्प्रदायिक नारे और दंगे उभाड़ने की साजिशें पूरे समाज को ख़ून के दलदल में डुबो सकती हैं। केवल धार्मिक अल्पसंख्यक ही नहीं, समूची गरीब मेहतनक़श आबादी को भीषण रक्तपात का कहर झेलना पड़ सकता है। संघ परिवार जो फासीवादी लहर उभाड़ रहे है, वह मुस्लिम आबादी के बीच भी धार्मिक मूलतत्ववादी फासीवादी गुटों को आधार बनाने का अवसर दे रहा है। इस तरह दोनों एक-दूसरे की सहायता कर रहे हैं। दिल्ली के चुनाव में मुस्लिम इत्तहादुल मुसलमीन के नेता असदुद्दीन ओवैसी के साथ भाजपा के गुपचुप गँठजोड़ की ख़बरों पर किसी को हैरानी नहीं होनी चाहिए।

इस्लामी कट्टरपंथी आतंकवाद भी फासीवाद का ही दूसरा रूप है, जो मुस्लिम हितों की हिफ़ाज़त के नाम पर जिहाद का झण्डा उठाकर जो कारगुज़ारियाँ कर रहा है उससे भारत में हिन्दुत्ववादियों का ही पक्ष मजबूत हो रहा है। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इतिहास गवाह है कि सर्वइस्लामवाद का नारा देने वाले वहाबी कट्टरपंथ ने पूरी दुनिया में हर जगह अन्ततः साम्राज्यवाद का ही हितपोषण किया है। आज भी, लीबिया में, इराक में, सीरिया में, मिस्र में, अफगानिस्तान में – हर जगह उनकी यही भूमिका है। भारत में हर धार्मिक अल्पसंख्यक आबादी को यह बात समझनी ही होगी कि वे अपनी हिफ़ाज़त धार्मिक कट्टरपंथ का झण्डा नहीं बल्कि वास्तविक धर्मनिरपेक्षता का झण्डा उठाकर ही कर सकते हैं। वास्तविक धर्मनिरपेक्षता की राजनीति केवल क्रान्तिकारी मज़दूर राजनीति ही हो सकती है जो जाति और धर्म से परे व्यापक मेहनतकश अवाम की जुझारू एकजुटता कायम कर सकती है। पूँजीवादी संकट का क्रान्तिकारी समाधान यदि अस्तित्व में नहीं आयेगा, तो लाजिमी तौर पर उसका फासीवादी समाधान सामने आयेगा। क्रान्ति के लिए यदि मज़दूर वर्ग संगठित नहीं होगा तो जनता फासीवादी बर्बरता का कहर झेलने के लिए अभिशप्त होगी।

जहाँ तक संसदीय सुअरबाड़े में साठ वर्षों से लोट लगाते चुनावी वामपंथी भाँड़ों की बात है, उनकी स्थिति सर्वाधिक हास्यास्पद है। ये चुनावी वामपंथी आर.एस.एस. भाजपा को शुरू से ही हिन्दुत्ववादी फासीवादी मानते हैं, पर गैर कांग्रेस-गैरभाजपा विकल्प बनाने की कोशिश में जिन दलों के साथ साम्प्रदायिकता-विरोधी सम्मेलन आदि करते रहते हैं और मोर्चा बनाने की हिकमतें लगाते रहते हैं, उनमें से अधिकांश कभी न कभी सत्ता की सेज पर भाजपा के साथ रात बिता चुके हैं। अब उनसे घास न मिलते देख आजकल तीन प्रमुख संशोधनवादी पार्टियों – भाकपा, माकपा, भाकपा (माले-लिबरेशन) आपस में ही मोर्चा बनाकर टीन की तलवार से फासिस्टों का मुकाबला करने की रणनीति बना रहे हैं। इन चुनावी वामपंथी खोमचेवालों से पूछा जाना चाहिए कि फासीवाद के विरोध की रणनीति के बारे में बीसवीं सदी के इतिहास की और मार्क्सवाद की शिक्षाएँ क्या हैं? क्या फासीवाद का मुक़ाबला मात्र संसद में बुर्जुआ दलों के साथ संयुक्त मोर्चा बनाकर, या फिर कुछ सम्मेलन और अनुष्ठानिक कार्यक्रम करके किया जा सकता है? अगर ये बात बहादुर मज़दूर वर्ग की पार्टी होने का दम भरते हैं (और इनके पास सीटू और एटक जैसी बड़ी राष्ट्रीय ट्रेड यूनियनें भी हैं) तो 1990 (आडवानी की रथयात्रा), 1992 (बाबरी मस्जिद ध्वंस), या 2002 (गुजरात नरसंहार) से लेकर अब तक हिन्दुत्ववादी फासीवाद के विरुद्ध व्यापक मेहनतकश जनता की लामबंदी के लिए इन्होंने क्या किया है? इन घटनाओं के बाद देश भर के शहरी ग्रामीण मज़दूरों को धार्मिक कट्टरपंथी फासीवाद विरोधी एक राष्ट्रीय रैली में भी इन्होंने जुटाने की कोशिश की? संघ परिवार का फासीवाद एक सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन है और मेहनतकश जनता का जुझारू आन्दोलन ही इसका मुक़ाबला कर सकता है। लेकिन इन संशोधनवादी पार्टियों ने तो साठ वर्षों से मज़दूर वर्ग को केवल दुअन्नी-चवन्नी की अर्थवादी लड़ाइयों में उलझाकर उसकी चेतना को भ्रष्ट करने का ही काम किया है। इनकी ट्रेडयूनियनों के भ्रष्ट नौकरशाह नेताओं ने मज़दूरों की जनवादी चेतना को भी कुन्द बनाने का ही काम किया है। मज़दूर वर्ग की राजनीति के नाम पर मज़दूरों के ये ग़द्दार केवल पोलिंग बूथ का ही रास्ता दिखाते रहे हैं। ये नकली वामपंथी, जो हमेशा से पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति का काम करते रहे हैं, उनका "समाजवाद" आज गलित कुष्ठ रोग जितना घिनौना हो चुका है। संसदीय राजनीति से और आर्थिक लड़ाइयों से इतर वर्ग संघर्ष की राजनीति को तो ज़माने पहले ये लोग तिलांजलि दे चुके हैं। अब तो उनकी चर्चा तक से इनके कलेजे काँप उठते हैं। अब एक बार फिर ये टीन की तलवार भाँज रहे हैं और इनसे जुड़े बुद्धिजीवी और संस्कृतिकर्मी मोमबत्तियाँ जलाकर फासीवाद के विरोध में कबीर और सूफ़ी सन्तों के क़लाम पढ़ और गा रहे हैं, या फिर एक-दूसरे को ही फासीवाद के विरोध में जोश दिलाने का काम करने की बाँझ कवायदें कर रहे हैं।

प्रश्न केवल चुनावी राजनीति का है ही नहीं। पूँजीवादी संकट पूरे समाज में (क्रान्तिकारी शक्तियों की प्रभावी उपस्थिति के अभाव में) फासीवादी प्रवृत्तियों और संस्कृति के लिए अनुकूल ज़मीन तैयार कर रहा है। संघ परिवार अपने तमाम अनुषंगी संगठनों के सहारे बहुत व्यवस्थित ढंग से इस ज़मीन पर अपनी फसलें बो रहा है। वह व्यापारियों और शहरी मध्यवर्ग में ही नहीं, आदिवासियों से लेकर शहरी मज़दूरों की बस्तियों तक में पैठकर काम कर रहा है। इसका जवाब एक ही हो सकता है। क्रान्तिकारी शक्तियाँ चाहे जितनी कमजोर हों, उन्हें बुनियादी वर्गों, विशेषकर मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार-उद्वेलन, लामबंदी और संगठन के काम को तेज करना होगा। जैसाकि भगतसिंह ने कहा था, जनता की वर्गीय चेतना को उन्नत और संगठित करके ही साम्प्रदायिकता का मुक़ाबला किया जा सकता है।

बुर्जुआ मानवतावादी अपीलें और धर्मनिरपेक्षता का राग अलापना कभी भी साम्प्रदायिक फासीवाद का मुकाबला नहीं कर पाया है और न ही कर पायेगा। सर्वहारा वर्ग चेतना की ज़मीन पर खड़ा होकर किया जाने वाला जुझारू और आक्रामक प्रचार ही इन विचारों के असर को तोड़ सकता है। हमें तमाम आर्थिक और सामाजिक दिक्कतों की असली जड़ को आम जनता के सामने नंगा करना होगा और साम्प्रदायिक प्रचार के पीछे के असली इरादे पर से सभी नकाब नोच डालने होंगे। साथ ही, ऐसा प्रचार करने वाले व्यक्तियों की असलियत को भी हमें जनता के बीच लाना होगा और बताना होगा कि उनका असली मकसद क्या है। धार्मिक कट्टरपन्थी फासीवाद का मुकाबला इसी ज़मीन पर खड़े होकर किया जा सकता है। वर्ग निरपेक्ष धर्म निरपेक्षता और 'मज़हब नहीं सिखाता' जैसी शेरो-शायरी का जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

हिटलर के प्रचार मन्त्री गोयबल्स ने एक बार कहा था कि यदि किसी झूठ को सौ बार दोहराओ तो वह सच बन जाता है। यही सारी दुनिया के फासिस्टों के प्रचार का मूलमंत्र है। आज मोदी की इस बात के लिए बड़ी तारीफ़ की जाती है कि वह मीडिया का कुशल इस्तेमाल करने में बहुत माहिर हैं। लेकिन यह तो तमाम फासिस्टों की ख़ूबी होती है। मोदी को "विकास पुरुष" के बतौर पेश करने में लगे मीडिया को कभी यह नहीं दिखायी पड़ता कि गुजरात में मोदी के तीन बार के शासन में मज़दूरों और ग़रीबों की क्या हालत है। आज आर्थिक और राजनीतिक संकट से तंग आयी जनता के सामने कारपोरेट मीडिया देश की सभी समस्याओं के समाधान के तौर पर 'सशक्त और निर्णायक' नेता के रूप में मोदी को पेश कर रहा है।

मेहनतकशों को ऐसे झूठे प्रचारों से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। उन्हें यह समझ लेना होगा कि तेज विकास की राह पर देश को सरपट दौड़ाने के तमाम दावों का मतलब होता है मज़दूरों की लूट-खसोट में और बढ़ोत्तरी। ऐसे 'विकास' के रथ के पहिए हमेशा ही मेहनतकशों और गरीबों के ख़ून से लथपथ होते हैं। लेकिन इतिहास इस बात का भी गवाह है कि हर फासिस्ट तानाशाह को धूल में मिलाने का काम भी मज़दूर वर्ग की लौह मुट्ठी ने ही किया है!

हमें फासीवाद को विचारधारा और राजनीति में तो परास्त करना ही होगा, लेकिन साथ ही हमें उन्हें सड़क पर भी परास्त करना होगा। इसके लिए हमें मज़दूरों के लड़ाकू और जुझारू संगठन बनाने होंगे। ग़ौरतलब है कि जर्मनी के कम्युनिस्टों ने फासीवादी गिरोहों से निपटने के लिए कारख़ाना ब्रिगेडें खड़ी की थीं, जो सड़क पर फासीवादी गुण्डों के हमलों का जवाब देने और उन्हें सबक सिखाने का काम कारगर तरीके से करती थीं। बाद में यह प्रयोग आगे नहीं बढ़ सका और फासीवादियों ने जर्मनी में अपनी सत्ता क़ायम कर ली। मज़दूर वर्ग का बड़ा हिस्सा वहाँ तब भी सामाजिक जनवादियों के प्रभाव में ही था और क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों की पकड़ उतनी मज़बूत नहीं हो पायी थी। लेकिन उस छोटे-से प्रयोग ने दिखा दिया था कि फासीवादी गुण्डों से सड़क पर ही निपटा जा सकता है। उनके साथ तर्क करने और वाद-विवाद करने की कोई गुंजाइश नहीं होती है। साम्प्रदायिक दंगों को रोकने और फासीवादी हमलों को रोकने के लिए ऐसे ही दस्ते छात्र और युवा मोर्चे पर भी बनाये जाने चाहिए। छात्रों-युवाओं को ऐसे हमलों से निपटने के लिए आत्मरक्षा और जनरक्षा हेतु शारीरिक प्रशिक्षण और मार्शल आर्ट्स का प्रशिक्षण देने का काम भी क्रान्तिकारी छात्र-युवा संगठनों को करना चाहिए। उन्हें स्पोर्ट्स क्लब, जिम, मनोरंजन क्लब आदि जैसी संस्थाएँ खड़ी करनी चाहिए, जहाँ राजनीतिक शिक्षण-प्रशिक्षण और तार्किकता व वैज्ञानिकता के प्रसार का काम भी किया जाये।

हम एक बार फिर मेहनतकश साथियों और आम नागरिकों से कहना चाहते हैं कि साम्प्रदायिक फासीवादियों के भड़काऊ बयानों से अपने ख़ून में उबाल लाने से पहले ख़ुद से पूछिये: क्या ऐसे दंगों में कभी सिंघल, तोगड़िया, ओवैसी, आज़म खाँ, मुलायमसिंह यादव, राज ठाकरे, आडवाणी या मोदी जैसे लोग मरते हैं? क्या कभी उनके बच्चों का क़त्ल होता है? क्या कभी उनके घर जलते हैं? हमारे लोगों की बेनाम लाशें सड़कों पर पड़ी धू-धू जलतीं हैं। सारे के सारे धार्मिक कट्टरपन्थी तो भड़काऊ बयान देकर अपनी ज़ेड श्रेणी की सुरक्षा, पुलिस और गाड़ियों के रेले के साथ अपने महलों में वापस लौट जाते हैं। और हम उनके झाँसे में आकर अपने ही वर्ग भाइयों से लड़ते हैं। इसलिए, धार्मिक जुनूनी प्रचार की झोंक में बहने के बजाय इसकी असलियत को समझिये और अपनी ज़िन्दगी को बदलने की असली लड़ाई में लगने के बारे में सोचिये। सभी मेहनतकशों की एकता इसकी पहली शर्त है!

"लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।"

– शहीदेआज़म भगतसिंह

भारत को 'मैन्युफ़ैक्चरिंग हब' बनाने के मोदी के सपने के मायने

मज़दूरों को गन्ने और तिलहन की तरह पेरकर देशी-विदेशी पूँजीपतियों को तिजोरियाँ भरने की खुली छूट देना

आनन्द सिंह

नरेन्द्र मोदी ने 15 अगस्त को लाल किले की प्राचीर से दिये अपने पहले स्वतन्त्रता-दिवस भाषण में दुनियाभर के लुटेरे साम्राज्यवादियों को भारत में निवेश करने के लिए खुला आमन्त्रण देते हुए कहा था, 'कम, मेक इन इण्डिया' (आओ, भारत में बनाओ)। यह तथ्य अपने आप में इस आज़ादी की कलई खोलने के लिए पर्याप्त है कि बर्तानवी गुलामी से आज़ादी मिलने के 67 साल बाद भी इस देश के हुक्मरान अपने देश के विकास के लिए विदेशी पूँजी के सामने दण्डवत हो रहे हैं। जापान, आस्ट्रेलिया और अमेरिका के दौरे पर मोदी ने विदेशी पूँजी को रिझाने के लिए तरह-तरह के जतन किये। 25 सितम्बर को मोदी ने तमाम नामी-गिरामी देशी-विदेशी पूँजीपतियों से ठसाठस भरे नई दिल्ली के विज्ञान भवन में 'मेक इन इण्डिया' के अपने जुमले को मूर्त रूप देते हुए भारत को दुनिया का कारख़ाना और 'मैन्युफ़ैक्चरिंग हब' बनाने के अपने सपने के बारे में बताया। इस आयोजन में मोदी ने पिछली सरकार के रवैये से रूठे हुए भारतीय पूँजीपतियों को पूरा भरोसा दिलाते हुए कहा कि अब उनको देश छोड़कर किसी दूसरे देश में पूँजी लगाने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि अब सरकार उनके कामों में कम से कम हस्तक्षेप करेगी (दूसरे शब्दों में उनको अकूत मुनाफ़ा कमाने का पूरा मौक़ा देगी)। ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के लिए लार टपका रहे पूँजीपतियों की मानो मुँह माँगी मुराद पूरी हो गयी हो। उनकी ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। आयोजन के दौरान और उसके बाद मीडिया में तमाम पूँजीपतियों ने नरेन्द्र मोदी की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सेन्सेक्स में ज़बरदस्त उछाल देखने में आया।

नरेन्द्र मोदी और उनके भक्तगण अपनी बात कुछ इस ढंग से रखते हैं कि मानो भारत को 'मैन्युफ़ैक्चरिंग हब' बनाने का सपना उनसे पहले किसी और ने नहीं देखा। जबकि सच्चाई यह है कि नवउदारवाद के पिछले ढाई दशक में हर सरकार इसी तरह के सपने देखती आयी है और इसी मक़सद से देशी पूँजीपतियों को तमाम रियायतें और विदेशी पूँजी के सामने लाल कालीनें बिछाती आयी है। लेकिन इसके बावजूद भारत के सकल घरेलू उत्पाद में मैन्युफ़ैक्चरिंग क्षेत्र का योगदान महज़ 15-16 फ़ीसदी है, जबकि सर्विस क्षेत्र का योगदान 57 फ़ीसदी है। इससे साफ़ है कि मैन्युफ़ैक्चरिंग को बढ़ावा देने के नाम पर सरकार द्वारा दी गयी रियायतों का लाभ उठाने के बावजूद पूँजीपति आईटी, रियल स्टेट, बैंकिंग, बीमा, मीडिया, विज्ञापन, होटल आदि यानी सर्विस क्षेत्र में निवेश करते हैं क्योंकि इस क्षेत्र में टर्नओवर ज़्यादा होता है यानी उन्हें कम समय में ही ज़्यादा मुनाफ़ा मिल जाता है। भारत में मैन्युफ़ैक्चरिंग क्षेत्र कम विकसित होने की वजह के बारे में इस बात पर प्राय: आम सहमति देखने को आती है कि यहाँ अवरचनागत (इन्फ़्रास्ट्रक्चरल) विकास यानी सड़कों, रेलमार्गों, बन्दरगाहों, हवाई अड्डों का विकास बेहद धीमा रहा है। लेकिन हमें यह नहीं बताया जाता कि इसके लिए भी विकास का नव-उदारवादी मॉडल ही ज़िम्मेदार है जिसमें राज्य के ख़र्चों को कम से कम रखने की बात की जाती है और निजी पूँजी को मनचाहे क्षेत्र में निवेश की छूट देने की वजह से वह अवरचनागत क्षेत्र में निवेश नहीं होती क्योंकि इस क्षेत्र में मुनाफ़ा प्राप्त करने में अपेक्षाकृत ज़्यादा समय लगता है। इस समस्या से निपटने के लिए पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप का जो शिगूफ़ा नव-उदारवादी युग में उछाला गया वह भी कारगर साबित नहीं हो पाया है।

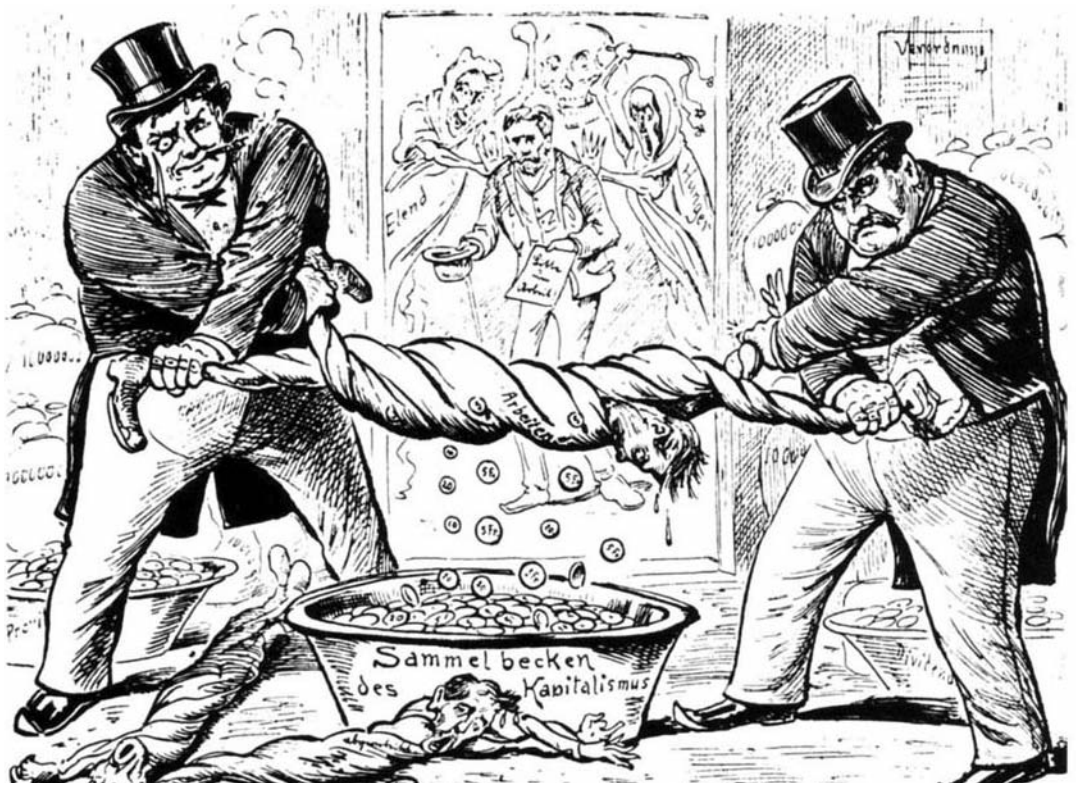

भारत में मैन्युफ़ैक्चरिंग के विकसित न हो पाने की एक अन्य वजह बिजली का संकट बताया जाती है। लेकिन बिजली संकट की हाय-तौबा मचाने वाले हमें यह नहीं बताते कि इस संकट के लिए भी निजी कम्पनियों की मुनाफ़े की सनक ही ज़िम्मेदार है। कोयला घोटाले में यह बात साफ़ हो चुकी है कि किस तरह इस देश के अकूत प्राकृतिक संसाधनों को औने-पौने दामों पर निजी पूँजी के हवाले किये जाने के बावजूद बिजली संकट से निजात मिलने के कोई आसार नहीं दिख रहे हैं। उच्चतम न्यायालय के हालिया फ़ैसले के बाद अब बस होगा यह कि पुरानी प्रक्रिया के बदले नयी प्रक्रिया से कोयला ब्लॉकों का आबण्टन किया जायेगा। यानी निजी पूँजी को मुनाफ़ा कमाने के अवसर प्रदान करने की नयी प्रक्रिया तलाश की जायेगी। इस बात की उम्मीद बाँधने की कोई वजह नहीं नज़र आती कि इस नयी प्रक्रिया से बिजली संकट से निजात मिलेगी।

मोदी सरकार अपनी पूर्ववर्ती सरकारों से सिर्फ़ इस मायने में अलग है कि वह अपने मालिक यानी पूँजीपति वर्ग के सामने कहीं अधिक निर्लज्जता के साथ नतमस्तक होने के लिए तत्पर है। जहाँ पहले सरकारों के प्रधानमन्त्री खुले रूप से पूँजीपतियों से अपने सम्बन्ध उजागर करने से परहेज़ करते थे, नरेन्द्र मोदी पूँजीपतियों से खुलेआम गले मिलते हैं, उनके कार्यक्रमों में शिरकत करते हैं और अपनी मालिक भक्ति की बेहिचक नुमाइश करते हैं। 'मेक इन इण्डिया' को औपचारिक रूप से लांच करने के कुछ ही दिनों के भीतर मोदी ने पूँजीपतियों को मुँहमाँगा तोहफ़ा देते हुए उनको तथाकथित 'इंस्पेक्टर राज' से मुक्त करने के नाम पर उन्हें इस बात की पूरी छूट देने का ऐलान किया कि वे मुनाफ़े की अपनी अन्धी हवस को पूरा करने की ख़ातिर श्रम क़ानूनों को ताक पर रखकर जितना मर्जी मज़दूरों की हड्डियाँ निचोड़ें, उनकी कोई जाँच-पड़ताल नहीं की जायेगी, उन पर कोई निगरानी नहीं रखी जायेगी। वैसे तो लेबर इंस्पेक्टर की जाँच और निगरानी का पहले भी मज़दूरों के लिए कोई ख़ास मायने नहीं था, लेकिन यदि मज़दूर जागरूक होकर लेबर इंस्पेक्टर पर दबाव बनाते थे तो एक हद तक श्रम क़ानूनों को लागू करवा सकते थे। परन्तु अब कारख़ाना मालिकों को इस सिरदर्द से भी निजात मिल जायेगी, क्योंकि अब उन्हें बस 'सेल्फ़ सर्टिफ़िकेशन' देना होगा यानी ख़ुद से ही लिखकर देना होगा कि उनके कारख़ाने में किसी श्रम क़ानून का उल्लंघन नहीं हो रहा। मोदी ने पूँजीपतियों को आश्वासन दिया है कि सरकार उन पर पूरा भरोसा करती है क्योंकि वे देश के नागरिक हैं। 'श्रमेव जयते' का पाखण्डपूर्ण नारा देने वाले मोदी से पूछा जाना चाहिए कि क्या मज़दूर इस देश के नागरिक नहीं हैं कि सरकार अब उन पर इतना भी भरोसा नहीं करेगी कि उनकी शिकायतों पर ग़ौर करके कारख़ाना मालिक के ख़िलाफ़ कार्रवाई करे।

अपने पाँच महीने के कार्यकाल में ही मोदी सरकार ने श्रम क़ानूनों को पूँजीपतियों के पक्ष में फेरबदल करके मज़दूरों को पूरी तरह उनके रहमो-करम पर छोड़ने की मंशा ज़ाहिर कर दी है। हरियाणा और महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों में जीत के बाद अब वह बड़े पैमाने पर तथाकथित श्रम सुधारों को लागू करने की योजना बना रही है। दरअसल भारत को 'मैन्युफ़ैक्चरिंग हब' बनाने की मोदी सरकार की योजना को अंजाम देने के लिए दुनिया भर के पूँजीपतियों को यह संकेत देना ज़रूरी है कि भारत सरकार उनकी पूँजी को आमन्त्रित करने के लिए मज़दूरों के सारे हक़ो-हुकूक छीनकर उनको पूँजीपतियों के मुनाफ़े को बढ़ाने की मशीन के पुर्ज़े में तब्दील करने के लिए कटिबद्ध है। मशीनी कल-पुर्ज़ों से बने शेर के रूप में 'मेक इन इण्डिया' का लोगो भी कुछ ऐसा ही सन्देश देता है। इस लोगो से भी स्पष्ट है कि 'मेक इन इण्डिया' का सार है पूँजी रूपी शेर की ताक़त बढ़ाने के लिए मज़दूरों को कल-पुर्ज़े में तब्दील करना।

ग़ौरतलब है कि मौजूदा समय में चीन दुनिया का सबसे बड़ा 'मैन्युफ़ैक्चरिंग हब' है। माओ की मृत्यु के बाद देंग सिओपिंग की 'बाज़ार समाजवाद' की नीतियों का कुल नतीजा यह हुआ कि चीन की शिक्षित, प्रशिक्षित एवं स्वस्थ आबादी (जिसकी नींव समाजवाद के दौर में रखी गयी थी) का इस्तेमाल साम्राज्यवादी पूँजी के विस्तार के लिए सस्ती श्रमशक्ति के रूप में किया गया जिसके फलस्वरूप चीन तीन दशकों के भीतर दुनिया का कारख़ाना कहा जाने लगा जहाँ टेक्सटाइल्स से लेकर इलेक्ट्रॉनिक्स, मोबाइल फ़ोन, होम अप्लायंस, मशीन पार्ट, खिलौनों आदि का भारी पैमाने पर उत्पादन होने लगा। चीन जैसे तीसरी दुनिया के देशों में मैन्युफ़ैक्चरिंग हब बनने की यह प्रक्रिया फ़ोर्डिस्ट असेम्बली लाइन के विघटन और एक अदृश्य वैश्विक असेम्बली लाइन के अस्तित्व में आने से सीधे तौर पर जुड़ी है। लेकिन इन मैन्युफ़ैक्चरिंग हबों में काम करने वाले मज़दूरों की ज़िन्दगी के हालात दिन-पर-दिन बद से बदतर होते चले गये। पिछले कुछ वर्षों में चीन में विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में ज़बरदस्त मज़दूर असन्तोष देखने में आया है जिसको क़ाबू में करने के लिए वहाँ के कई कारख़ानों में मालिकों को मजबूर होकर मज़दूरी में वृद्धि करनी पड़ी है। मज़दूरी बढ़ाने के दबाव के अलावा चीनी मुद्रा युआन के मूल्य में बढ़ोत्तरी से भी चीन में मैन्युफ़ैक्चरिंग की लागत बढ़ती जा रही है। इसलिए दुनिया भर के साम्राज्यवादी लुटेरे और उनके थिंक-टैंक दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में नये 'मैन्युफ़ैक्चरिंग हब' विकसित करने की सम्भावना तलाश रहे हैं जहाँ उन्हें सस्ती श्रमशक्ति और सस्ता कच्चा माल आसानी से उपलब्ध हो सके। भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ देश मसलन फिलीपींस, इण्डोनेशिया, मलेशिया, थाईलैण्ड, म्यान्मार, वियतनाम, कम्बोडिया आदि उनकी इस योजना में अहम स्थान रखते हैं। इसीलिए ये लुटेरे पिछले कुछ वर्षों से इन देशों की सरकारों पर यह दबाव बना रहे हैं कि वे अपने देश में विदेशी पूँजी निवेश की राह की सारी अड़चनों को दूर करें, अन्यथा विदेशी पूँजी उनके देश में लगने की बजाय किसी और देश में लग जायेगी। विश्व बैंक ने दुनिया के तमाम देशों में पूँजी निवेश की सहूलियत मापने के लिए 'ईज़ ऑफ बिज़नेस' (व्यवसाय की सहूलियत) नामक एक सूचकांक भी ईज़ाद किया है जिसमें भारत 135 वें स्थान पर है। 'मेक इन इण्डिया' लांच करते समय मोदी ने 135 से 50 वें स्थान पर पहुँचने की बात की। यही वजह है कि मोदी सरकार विदेशी पूँजी को रिझाने के लिए हरसम्भव प्रयास कर रही है। श्रम क़ानूनों में फेरबदल के अलावा उसने भूमि अधिग्रहण क़ानून और पर्यावरण क़ानूनों में भी बदलाव करके पूँजी

(पेज 14 पर जारी)

अहमदनगर में दलित हत्याकाण्ड और एक बार फिर आँखों के सामने नाचते सवाल

दलित मुक्ति की महान परियोजना अस्मितावादी और प्रतीकवादी राजनीति से निर्णायक विच्छेद करके ही आगे बढ़ सकती है

महाराष्ट्र के अहमदनगर ज़िले के जावखेड़े गाँव में 20 अक्टूबर की रात को एक दलित परिवार के तीन लोगों की बेरहमी से हत्या और उसके बाद उनके टुकड़े-टुकड़े करके बोरवेल में फेंक दिये जाने के काण्ड ने एक बार फिर महाराष्ट्र की जनता को झकझोरकर रख दिया है। सभी चुनावी पार्टियों समेत तमाम दलितवादी चुनावी पार्टियाँ भी अपने संकीर्ण हितों के लिए इस घटना को एक "सुनहरे अवसर" के तौर पर देख रही हैं और दलितों के हित के नाम पर इसका पूरा फ़ायदा उठाने की कवायद में लग गयी हैं। पुलिस अभी तक किसी भी आरोपी को गिरफ़्तार नहीं कर पायी है और हमेशा की तरह ही उसकी पक्षधरता स्पष्ट हो गयी है। वहीं पूँजीवादी मीडिया हर बार की तरह इस बार भी या तो इस घटना पर पर्दा डालने का काम कर रहा है या फिर इस घटना को महज़ दो परिवारों के बीच आपसी रंजिश का नाम देकर दलितों पर हो रहे अत्याचारों को ढँकने का प्रयास कर रहा है। लेकिन एक बात तो साफ़ है कि चाहे मसला कुछ भी हो, हर विवाद में अन्त में दलितों को ही इन बर्बर अत्याचारों का शिकार होना पड़ता है। हर-हमेशा ग़रीब दलितों को ही इन बर्बर काण्डों का निशाना बनाया जाता है। हमेशा सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर आबादी को ही ये जुल्म सहने पड़ते हैं।

अगर पिछले 40-50 वर्षों में हुई दलित-विरोधी उत्पीड़न की घटनाओं को देखा जाये तो यह साफ़ हो जाता है कि दलितों पर अत्याचार की 10 में से 9 घटनाओं में उत्पीड़न का शिकार आम मेहनतकश दलित आबादी यानी कि ग्रामीण सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा और शहरी ग़रीब मज़दूर दलित आबादी होती है। यह समझना आज बेहद ज़रूरी है कि जातिगत उत्पीड़न का एक वर्ग पहलू है और यह पहलू आज सबसे ज़्यादा अहम है। 90 फ़ीसदी से भी ज़्यादा दलित आबादी आज भयंकर ग़रीबी और पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण का शिकार है। गाँवों में धनी किसानों के खेतों में दलितों का ग्रामीण सर्वहारा के रूप में भयंकर शोषण किया जाता है। शहरों में ग़रीब दलित आबादी को फ़ैक्टरी मालिकों, ठेकेदारों दलालों की लूट का शिकार होना पड़ता है जो कि मेहनतकश आबादी के शरीर से ख़ून की आख़िरी बूँद तक निचोड़कर अपनी जेबें गरम करते हैं। आज मेहनतकश दलित आबादी पूँजीवादी व्यवस्था और ब्राह्मणवाद के " पवित्र गठबन्धन" के हाथों शोषण का शिकार है।

पूँजीवादी ब्राह्मणवाद ने अपनी सेवा के लिए दलितों के बीच से भी एक छोटा हिस्सा तैयार किया है। दलित जातियों का एक बेहद छोटा सा हिस्सा जो सामाजिक पदानुक्रम में ऊपर चला गया है, वह आज पूँजीवाद की ही सेवा कर रहा है। यह हिस्सा ग़रीब मेहनतकश दलित आबादी पर होने वाले हर अत्याचार पर सन्दिग्ध चुप्पी साधता रहा है। यह खाता-पीता उच्च-मध्यवर्गीय तबका आज किसी भी रूप में ग़रीब दलित आबादी के साथ नहीं खड़ा है। फ़िलहाल यह तबका बीमे और बंगलों की किश्तें भरने में व्यस्त है। इस व्यस्तता से थोड़ी राहत मिलने पर यह तबका तमाम गोष्ठियों में दलित मुक्ति की गरमा-गरम बातें करते हुए मिल जाता है। हालाँकि कई बार इसे भी अपमानजनक टीका-टिप्पणियों का शिकार होना पड़ता है, लेकिन इसका विरोध प्रतीकात्मक कार्रवाइयों और दिखावटी रस्म-अदायगी तक ही सीमित है। यह पूँजीवाद से मिली समृद्धि की कुछ मलाई चाटकर सन्तोष कर रहा है। इतिहास गवाह है कि इसी खाते-पीते तबके द्वारा बनाये गये अनेकों दलितवादी-अम्बेडकरवादी संगठन आज मेहनतकश दलित आबादी के वास्तविक उत्पीड़न के ख़िलाफ़ कभी आवाज़ नहीं उठाते। ये संगठन बथानी टोला, लक्ष्मणपुर बाथे में ग़रीब दलितों के हत्यारों के अदालत द्वारा छोड़ दिये जाने पर चुप रहते हैं। ये अस्मितावादी दलित राजनीति करने वाले संगठन गोहाणा, भगाणा, मिर्चपुर, खैरलांजी जैसी घटनाएँ घटने पर कोई जनान्दोलन नहीं खड़ा करते। ये कभी भी भूमिहीन दलित मज़दूरों के पक्ष में खेतिहर मज़दूरी बढ़ाने की लड़ाई नहीं लड़ते और कभी शहरी ग़रीब दलित मज़दूरों की माँगों को नहीं उठाते। बहुसंख्यक दलित आबादी के लिए वास्तव में अहमियत रखने वाले इन मुद्दों पर या तो ये संगठन चुप्पी साधे रहते हैं या फिर कुछ जुबानी जमाख़र्च और रस्मअदायगी करके बैठ जाते हैं। लेकिन अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए मेहनतकश दलित आबादी को ये अस्मितावादी राजनीति के भँवर में ज़रूर फँसा देते हैं। अस्मितावादी प्रतीकात्मक मुद्दों पर प्रतीकात्मक कार्रवाइयाँ करने में ये सबसे आगे रहते हैं। ये विश्वविद्यालयों के नामों, मूर्तियों, और कार्टूनों को लेकर ख़ूब शोर मचाते हैं। अहमदनगर में हुई घटना में भी इनकी राजनीति खुलकर सामने आयी। इस भयावह काण्ड पर भी या तो ये चुप रहे या फिर कुछ रस्मी उछल-कूद मचाकर शान्त बैठ गये। दलित मुक्ति की परियोजना पर ये संगठन अपना 'कॉपीराइट' मानते हैं और यदि कोई एक सही विचारधारा लेकर ग़रीब दलित आबादी को व्यापक मेहनतकश आबादी के साथ जोड़ने की कोशिश करता है तो ये तुरन्त उस पर ब्राह्मणवादी और मनुवादी होने का लेबल चस्पाँ कर देते हैं। वैसे भी इनकी दलित मुक्ति परियोजना पहले ही पूँजीवादी व्यवस्था में सुस्थिर हो चुके दलितों के छोटे से हिस्से को ही और अधिक सम्पन्न बनाने तक ही सीमित है।

ब्राह्मणवादी विचारधारा किसी एक जाति की नहीं बल्कि पूरे शासक वर्ग की विचारधारा है और इतिहास में हर शासक वर्ग को विचारधारात्मक उपकरण देती रही है। पहले ब्राह्मणवादी विचारधारा सामन्तवाद के साथ " पवित्र गठबन्धन" बनाये हुए थी, आज ब्राह्मणवादी विचारधारा पूँजीवाद के साथ एक "पवित्र गठबन्धन" बना चुकी है। यही कारण है कि पिछले 20-30 वर्षों में जिन लोगों ने सबसे अधिक और भयावह दलित-उत्पीड़न की घटनाओं को अंजाम दिया है, वे ज़्यादातर आर्थिक व सामाजिक रूप से उभरती हुई धनी किसान व कुलक मध्यम जातियों से आते हैं। किसान-कुलक मध्यम जातियाँ आज सबसे बर्बर दलित-उत्पीडन की घटनाओं को अंजाम दे रही हैं जो कि जातिगत पदानुक्रम में पिछड़ी जातियों में आते हैं। इसलिए यह समझना ज़रूरी है कि ब्राह्मणवादी विचारधारा किसी जाति-विशेष की विचारधारा नहीं है, बल्कि शासक वर्गों की विचारधारा है। सत्ता जिसके भी हाथ में रही हो, उसने ब्राह्मणवाद की ऊँच-नीच की विचारधारा का इस्तेमाल ग़रीब जनता को दबाने और बाँटने के लिए किया है। यहाँ तक कि मुगलों और तुर्क शासकों ने भी ब्राह्मणवाद की विचारधारा को ईर्ष्या की निगाह से देखा था। आज की पूँजीवादी व्यवस्था में ब्राह्मणवादी विचारधारा पूँजीवाद की विचारधारा है। आज ब्राह्मणवादी विचारधारा के ज़हर को पूँजीवाद का प्रश्रय प्राप्त है। ब्राह्मणवादी विचारधारा के विरुद्ध कोई भी सच्ची लड़ाई पूँजीवादी मुनाफ़ाखोर व्यवस्था के ख़िलाफ़ भी जंग का एलान किये बिना नहीं लड़ी जा सकती है। जो ब्राह्मणवाद का विरोध करने की तो बात करता है लेकिन पूँजीवाद को कठघरे में नहीं खड़ा करता, वह या तो ख़ुद मूर्ख है या मेहनतकश दलित आबादी को मूर्ख बना रहा है। मिसाल के तौर पर, चन्द्रभान प्रसाद जैसे बाज़ारू अस्मितावादी दलितवादी चिन्तक हैं जो दलितों के बीच एक पूँजीपति वर्ग पैदा होने पर ख़ुशी मनाते हैं और कहते हैं कि अब दलितों का भी एक हिस्सा शोषण कर सकता है! वे इस बात पर चुप्पी साध लेते हैं कि जिनका वे शोषण कर रहे हैं उनका एक बड़ा हिस्सा भी वास्तव में दलित आबादी ही है! आज यह स्पष्ट हो चुका है कि रामदास आठवले, मायावती, उदित राज, रामविलास पासवान, थिरुमावलवन आदि जैसे दलित हितों के " रखवाले" सवर्णवादी ताक़तों की गोद में जा बैठने में ज़रा भी नहीं शर्माते। तमाम ईमानदार कार्यकर्ताओं के होने के बावजूद भी आज उच्च मध्यवर्गीय अम्बेडकरवादी-दलितवादी संगठन अस्मितावादी राजनीति के भँवर में ही फँसे रह जाते हैं। पिछले तीन-चार दशकों के रैडिकल अस्मितावाद और प्रतीकवाद से दलित आबादी को कुछ भी हासिल नहीं हुआ है। अब वक़्त आ गया है कि दलित मुक्ति के आन्दोलन के ठहराव के असली कारणों को समझा जाये। अब वक़्त आ गया है कि हम अस्मितावाद और प्रतीकवाद और 'सिर के बल खड़े जातिवाद' को छोड़कर इस बात को समझें कि दलित मुक्ति की पूरी परियोजना समूची पूँजीवादी व्यवस्था के ध्वंस की परियोजना के साथ जुड़कर ही मुकाम तक पहुँच सकती है। आज यह साफ़ तौर पर दिखायी दे रहा है कि पूँजीवाद और ब्राह्मणवाद नाभिनालबद्ध हैं।

तमाम दलितवादी-अम्बेडकरवादी चुनावी पार्टियाँ आज ब्राह्मणवादी विचारधारा से मुकाबला करने की रत्ती भर भी ताक़त नहीं रखती। रामदास आठवले, उदित राज, रामविलास पासवान जैसे दलित-मुक्ति की बात करने वाले लोग आज भाजपा जैसी धुर दक्षिणपन्थी और ब्राह्मणवादी विचारधारा की वाहक पार्टी की गोद में जाकर बैठ चुके हैं और इनकी अवसरवादिता बिल्कुल नंगी हो चुकी है। मायावती के शासन-काल में उत्तर प्रदेश में दलितों पर हुए असंख्य अत्याचारों के बारे में हर कोई जानता है। इसलिए इन पार्टियों से उम्मीद लगाना आज बेकार है और इनकी दलित-मुक्ति की बात पर तो केवल हँसा ही जा सकता है। आज पूरी ताक़त के साथ ऐसी पार्टियों की अस्मितावादी राजनीति को नंगा करने की ज़रूरत है। आज दलितों के एक हिस्से को यह भी लगता है कि दलितवादी पार्टियों द्वारा किया जाने वाला भ्रष्टाचार न्यायोचित है। उन्हें लगता है कि यदि मुलायम सिंह की जगह मायावती भ्रष्टाचार करे और ग़रीबों को लूटे तो यह ठीक है। अगर ऊँची और मँझोली जाति के शासकों ने इतने समय तक लूट और भ्रष्टाचार मचाया तो अब कुछ मौक़ा दलित शासकों को भी मिलना चाहिए! कई खाते-पीते दलित बुद्धिजीवी यह भी तर्क करते हैं कि यदि दलित पूँजीपति ग़रीब मेहनतकश आबादी का ख़ून निचोड़कर तिजोरियाँ भरता है तो ग़रीब दलित आबादी को इस पर ख़ुश होना चाहिए! इस बात पर ख़ुश होना नासमझी ही होगी कि सवर्णों की जगह दलित लुटे और सवर्ण मालिक की जगह दलित मालिक हमारी मेहनत को लूटे क्योंकि तब भी सबसे ज़्यादा दलित मज़दूर और मेहनतकश ही लूटा जायेगा। बात केवल सवर्ण पूँजीपतियों द्वारा लूट के ख़िलाफ़ खड़े होने की नहीं है, बल्कि लूट की समूची व्यवस्था के ही ख़िलाफ़ खड़े होने की है। देश भर के मज़दूर वर्ग का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा दलित जातियों से आता है। यह आबादी पूँजीवादी शोषण और सवर्णवादी उत्पीड़न के जुवे तले दबी हुई है और इस जुवे को वह एक साथ ही उतारकर फेंक सकती है, अलग-अलग नहीं।

बहुसंख्यक दलित आबादी को जातिगत उत्पीड़न और पूँजीवादी शोषण से आज किस तरह से आज़ादी मिल सकती है? क्या अस्मितावादी राजनीति के रास्ते से उसे पिछले छह दशकों में कुछ मिला है? वास्तव में, दलित मुक्ति की परियोजना के रास्ते में आज सबसे बड़ी बाधा अस्मितावादी राजनीति ही है। जब तक इस अस्मितावादी राजनीति को इतिहास की कचरा-पेटी में पहुँचाकर समूची मेहनतकश आबादी की वर्ग एकजुटता नहीं बनायी जाती, तब तक पूँजीवाद और ब्राह्मणवाद के गठजोड़ को बरबाद नहीं किया जा सकता है। यह सही है कि मेहनतकश आबादी के भीतर भी अनेकों जातिगत पूर्वाग्रह मौजूद हैं। लेकिन उनको दीर्घकालिक संघर्ष और क्रान्तिकारी प्रचार के ज़रिये तोड़ा जा सकता है।

यह समझना आज बेहद ज़रूरी है कि वर्ग दृष्टिकोण से कटी कोई भी राजनीति और विचारधारा पूँजीवाद की ही सेवा करेगी। वर्ग एकजुटता व वर्ग दृष्टिकोण के अभाव ने पहले ही दलित मुक्ति के लक्ष्य को पर्याप्त नुक़सान पहुँचाया है। अस्मितावादी राजनीति ने स्वयं दलित आबादी को ही तमाम जातियों में बाँट दिया है। अस्मितावादी राजनीति के ज़हर ने विभिन्न दलित जातियों के बीच ही दीवार खड़ी कर दी है। अगर आज भी हम अस्मितावादी और प्रतीकवादी राजनीति करने वाली ऐसी ही लुटेरी पार्टियों और अवसरवादी संगठनों से उम्मीद लगाते रहेंगे तो आगे भी मिर्चपुर, खैरलांजी, भगाणा, अहमदनगर घटित होते रहेंगे! अगर हम इनकी जकड़बन्दी को तोड़ते नहीं तो दलित मुक्ति की महान परियोजना अस्मितावाद और प्रतीकवाद के भँवर में घूमती रहेगी। अब हमें हाथ पर हाथ धरकर नहीं बैठे रहना होगा और वर्तमान की जड़ता को तोड़ना होगा। दलित मुक्ति की महान परियोजना को सफल बनाने के लिए आज मेहनतकश दलित आबादी के बीच जाकर लगातार क्रान्तिकारी प्रचार के ज़रिये अस्मितावादी और प्रतीकवादी राजनीति को नंगा करना होगा और उसे व्यापक मज़दूर आबादी से जोड़ना होगा। तभी जाकर जाति व्यवस्था को हमेशा-हमेशा के लिए इतिहास की कचरा-पेटी में फेंका जा सकेगा।

- विराट

इबोला – महामारी या महाक़त्ल?

– डा. अमृत

पिछले कई महीनों से पश्चिमी अफ़्रीका में 'इबोला' नाम की बीमारी फैली हुई है जिसके इक्का-दुक्का मामले और देशों में भी सामने आ रहे हैं। पश्चिमी अफ़्रीका में इससे सब से ज़्यादा प्रभावित होने वाले देश लाइबेरिया, गिनी तथा सिएरा लिओन हैं, यहाँ 1 अक्टूबर, 2014 तक 7500 लोग इस बीमारी की चपेट में आ चुके हैं जिनमें से 3338 लोग मौत के मुँह में जा चुके हैं, मरने वालों में डॉक्टरों तथा नर्सों के सहित 220 स्वास्थ्यकर्मी भी हैं। अक्टूबर के अन्त तक इबोला से होने वाली मौतों की संख्या 5000 तक पहुँचने का अंदेशा है। फ़िलहाल इस महामारी के रुकने की कोई सम्भावना नहीं दिख रही है, उल्टा सम्भावना ये बनी हुई है कि यह और भी भयानक रूप लेते हुए कुछ सप्ताह तक अफ़्रीका महाद्वीप से निकलकर दूसरे महाद्वीपों तक फैल सकती है। हमेशा की तरह समूचा मीडिया 'शिकार' हुए लोगों की मदद करने के लिए चीत्कार तथा 'हमदर्दी' के घड़ियाली आँसुओं से भरा पड़ा है, सरकारों की तरफ़ से 'सख़्त क़दम' उठाने की अपीलें जारी हो रही हैं, बराक ओबामा से लेकर नरेन्द्र मोदी तक, सब 'बड़े' नेता फ़िक्र जता चुके हैं लेकिन जो असल बात ग़ायब है वह है महामारी फैलने के असल कारणों की निशानदेही।

इबोला एक क़िस्म का बुखार है जो इबोला नाम के वायरस से होता है और यह जानवरों से इंसानों में फैलता है। यह वायरस पश्चिमी अफ़्रीका के कई देशों के जंगलों में रहने वाले एक किस्म के चमगादड़ों तथा गुरिल्लों में पाया जाता है, यही जानवर प्रकृति में इस वायरस के ज़िन्दा रहने में मुख्य कड़ी माने जा रहे हैं। जब मनुष्य इन जानवरों के ख़ून या किसी और शारीरिक द्रव के सम्पर्क में आता है तो यह वायरस जानवरों से मनुष्य में फैलता है। इस बीमारी का पहला मामला कांगो (तब ज़ैरे) में 1976 में सामने आया था, तब से लेकर अब तक, यह बीमारी 20 से ज़्यादा बार फैल चुकी है। इससे पहले यह एक स्थानीय बीमारी समझी जाती थी जो ज़्यादा से ज़्यादा कुछ सौ मरीज़ों तक सीमित रहती थी, लेकिन पहली बार इसने इतना भयंकर रूप धारण किया है। पिछले साल दिसम्बर में इसका पहला मरीज़ सामने आया और तब से इबोला लगातार फैल रहा है और अफ़्रीका के देशों के लिए एक बड़ी चुनौती बन चुका है। परन्तु इस बीमारी को सिर्फ़ एक स्वास्थ्य-वैज्ञानिक समस्या बनाकर पेश किया जा रहा है जबकि इस बीमारी का फैलना एक ऐसा उदाहरण है जो यह स्पष्ट करता है कि कैसे बीमारियाँ सामाजिक-आर्थिक ढाँचे से जुडी हुई हैं, और बीमारियाँ सिर्फ़ एक स्वास्थ्य-वैज्ञानिक मसला न होकर एक सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक मसला है।

इबोला के फैलने का सबसे बड़ा कारण बड़े पैमाने पर हो रही जंगलों की अन्धाधुन्ध कटाई है। पश्चिमी अफ़्रीका के प्राचीन घने जंगलों में से 90 प्रतिशत जंगल काटे जा चुके हैं। सिएरा लिओन के तो सिर्फ़ 4 प्रतिशत जंगल बाक़ी बचे हैं जो अगर जंगल काटने की मौजूदा रफ़्तार बनी रही तो 2018 तक पूरी तरह ख़त्म हो जायेंगे। इसी तरह लाइबेरिया के जंगलों का बड़ा हिस्सा काटा जा चुका है, लेकिन सरकारों ने कुछ नहीं सीखा है। यहाँ के लोगों द्वारा 'चुनी' हुई राष्ट्रपति ऐलन जॉनसन सिर्लीफ़

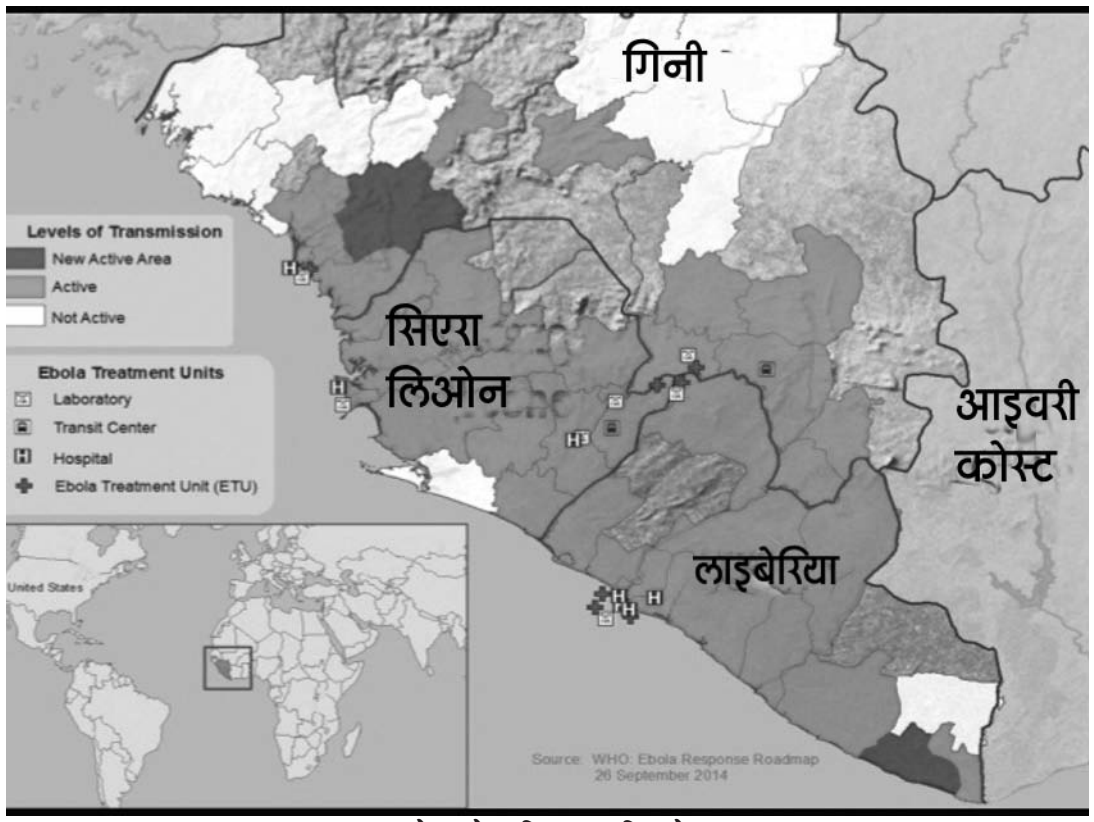

इबोला से अधिक प्रभावित देश

ने अभी कुछ ही महीने पहले पूरे देश के बाक़ी बचे जंगलों में से आधे को औद्योगिक 'कामों' के लिए बेच दिया है। वैसे यह हालात सिर्फ़ अफ़्रीका का ही नहीं है, एक अध्ययन के मुताबिक़ पिछले चालीस वर्षों में समूची धरती की जंगली वनस्पति तथा जीव-जन्तुओं का आधा हिस्सा ख़त्म हो चुका है। जंगलों की कटाई की वजह से जानवरों का प्राकृतिक रैनबसेरा खो जाता है और वह ठिकाना ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर भटकने लगते हैं, इसी दौरान वह इंसानों की बस्तियों में आ घुसते हैं तथा मनुष्यों के सम्पर्क में आते हैं। इस ग़ैर-प्राकृतिक सम्पर्क के चलते जंगली जीवों में पाये जाने वाले वायरस तथा अन्य कीटाणुओं के मनुष्यों में फैलने का ख़तरा पैदा होता है। चूँकि मनुष्य के अन्दर इन नयी बीमारियों से लड़ने की रोग-प्रतिरोधी क्षमता विकसित नहीं हुई होती, इसलिए ऐसी बीमारियों के भयंकर रूप ले लेने के काफ़ी आसार होते हैं। बिल्कुल यही इबोला के मामले में हो रहा है। लेकिन असल मुद्दा यह है कि जंगलों की कटाई ही क्यों हो रही है?

कुछ 'विशेषज्ञ' लोगों का कहना है कि जंगलों की कटाई का कारण बढ़ रही आबादी है, लेकिन जब ग़ौर से देखा जाता है तो असल कहानी कुछ और निकलती है, जिससे ये सभी 'विशेषज्ञ' ऐसे दूर भागते हैं जैसे चोर चोरी की जगह से दौड़ता है। जंगलों की कटाई का सबसे पहला कारण खनिजों के लिए खनन का काम है, जिसे पूँजीपतियों के टुकड़ों पर पलने वाले 'विशेषज्ञ' बड़ी चालाकी से 'मानवीय क्रियाकलाप' का नाम देते हैं। मगर इस तथाकथित 'मानवीय क्रियाकलाप' का मानवता के हित से कुछ लेना-देना नहीं है, बल्कि यह कुछ गिनी-चुनी कम्पनियों के मुनाफ़े की अन्धी दौड़ है। लाइबेरिया तथा सिएरा लिओन कच्ची लौह धातु के बड़े भण्डार हैं, जबकि छोटा-सा देश गिनी एल्युमिनियम के स्रोत खनिज बाक्साइट का दुनिया का सबसे बड़ा भण्डार है। अमेरिकी, ब्रिटिश और अन्य साम्राज्यवादी देशों की खनन कम्पनियों के लिए यहाँ बेहिसाब मुनाफ़ा है। ये कम्पनियाँ खनिजों की लूट के लिए जंगलों को काटते हुए इनके बहुत अन्दर तक घुस चुकी हैं तथा किसी भी क़ीमत पर अपने पैर पीछे खींचने को तैयार नहीं हैं, चाहे उनके मुनाफ़े के लिए समूची मानवता को कितनी भी बड़ी महामारियों का सामना क्यों न करना पड़े। उल्टा वे तो रहे-सहे जंगल काटने पर आमादा हैं जिसमें वहाँ की 'चुनी हुई' सरकारें उनकी हर मदद करने के लिए तैयार हैं। जंगलों की कटाई का दूसरा कारण भी प्रकृतिक संसाधानों की पूँजीवादी लूट से ही जुड़ा हुआ है। इन जंगलों की क़ीमती लकड़ी का दुनिया भर में सजावट तथा ऐशोआराम का फ़र्नीचर बनाने में इस्तेमाल होता है, इस कारोबार में भी अकूत मुनाफ़ा है। यही है वह 'मानवीय क्रियाकलाप' जिसमें कम्पनियाँ मुनाफ़ा पीट रही हैं और इन देशों के प्राकृतिक संसाधनों से बनी चीज़ें अमीर इस्तेमाल कर रहे हैं जबकि इसका नुक़सान स्थानीय ग़रीब आबादी को उठाना पड़ रहा है। इस बार अगर इबोला को क़ाबू में करने के लिए चौकसी के फ़रमान जारी हो रहे हैं और चीख़-पुकार हो रही है तो सिर्फ़ इसलिए कि इस बार इस बीमारी ने स्थानीय ग़रीब आबादी से निकलकर अमेरिका तथा अन्य अमीर देशों में फैलने का ख़तरा खड़ा कर दिया है।

जंगलों के क्षेत्र में कमी आने की एक और वजह दुनिया भर में हो रही 'ग्लोबल वार्मिंग' तथा पर्यावरणीय बदलाव हैं। बढ़ रहे प्रदूषण (इसका कारण फिर से पूँजीवाद है) के कारण धरती का तापमान लगातार बढ़ रहा है, इससे सबसे ज़्यादा प्रभावित हो रहे इलाक़ों में से एक पश्चिमी अफ़्रीका है। बार-बार आ रहे सूखे, भीषण गर्मी और इससे लगने वाली भयंकर आग, बाढ़ और तूफ़ान आदि भी जंगल तबाह होने का कारण बन रहे हैं। मौसम में हो रहे इन बदलावों के चलते जंगली जीव सुरक्षित जगहों की तलाश में प्रवास कर रहे हैं, जिस दौरान उनका मनुष्यों के सम्पर्क में आना तय है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह मौसमी बदलाव आने वाले दिनों में और तीव्र ही होंगे। ग्लोबल वार्मिंग तथा पर्यावरणीय तबाही के पीछे भी मुठ्ठीभर पूँजीपतियों का मुनाफ़ा है, लेकिन दुनिया भर की बिकाऊ मीडिया तथा चाटुकार बुद्धिजीवी इस झूठ को प्रचारित करने में लगे रहते हैं कि ऐसा पूरी मानवता के लालच तथा बढ़ती आबादी के कारण हो रहा है।

एक और महत्वपूर्ण कारण भी है इबोला के फैलने का। इन देशों में बहुसंख्यक आबादी भयंकर ग़रीबी में रहती है। सदियों तक अफ़्रीका महाद्वीप के देश अमानवीय उपनिवेशवादी शोषण के शिकार रहे हैं। चार-पाँच दशक पहले अफ़्रीका के अधिकांश देशों को 'आज़ादी' मिली, इसके बाद भी साम्राज्यवादियों के द्वारा इन देशों में अपनी लूट को जारी रखने के लिए सैन्य दख़लअन्दाज़ी, उनके द्वारा भड़काये जाने वाले लम्बे गृहयुद्ध तथा कठपुतली सरकारें क़ायम करने का सिलसिला बना रहा है। पश्चिमी अफ़्रीका के देश भी इसी कहानी को दुहराते हैं। लाइबेरिया में 1990 के दशक में और सिएरा लिओन में 2005 तक गृहयुद्ध चलता रहा है जिससे हज़ारों-लाखों लोग अपने घरों-ज़मीनों, जीवन निर्वाह के संसाधनों से विस्थापित हो गये तथा अपने ही देश में शरणार्थी बनकर जान बचाने तथा सिर छुपाने के लिए दूर-दराज के इलाक़ों और जंगलों में भटक रहे हैं। बड़ी आबादी ठिकाना बनाने, भोजन, ईंधन आदि के लिए जंगलों पर निर्भर है। भोजन के लिए लोग गुरिल्लों सहित दूसरे जंगली जानवरों का शिकार कर रहे हैं जिसके चलते इबोला वायरस मनुष्यों में दाख़िल हो रहा है।

अब देखते हैं कि इन देशों की सहायता के नाम पर क्या हो रहा है। अमेरिका स्थिति को 'क़ाबू' करने के लिए 3200 सैनिकों की फ़ौज भेज रहा है जिसका असल उद्देश्य इस संकट की आड़ में लाइबेरिया में अपने पैर जमाना है। लाइबेरिया की राष्ट्रपति सिर्लीफ़ ने 2008 में 'ऐफ्रीकोम' को अपना मुख्यालय स्थापित करने के लिए जगह देने की पेशकश की थी लेकिन तब अमेरिका ऐसा कर न सका। ज्ञात रहे कि ऐफ्रीकोम अफ़्रीका के देशों में अमेरिका की सैन्य कारवाइयों की देखरेख करने वाली सैन्य इकाई है। अब अमेरिका के हाथ में ऐसा करने का मौक़ा लगा है। दूसरी तरफ़ स्वास्थ्य सुविधाएँ पहुँचाने के लिए सब बड़े देश हाथ पीछे खींच रहे हैं। यह तय है कि सिर्फ़ स्थानीय देशों की स्वास्थ्य-सुविधाओं के दम पर इबोला से निपटना सम्भव नहीं है क्योंकि यहाँ स्वास्थ्य-ढाँचा नाममात्र का ही है। ये देश दुनियाभर में सेहत पर सबसे कम ख़र्च करने वाले देशों में आते हैं, भले ही यहाँ बेहिसाब प्राकृतिक धन-सम्पदा है। लेकिन 200 से ज़्यादा स्वास्थ्यकर्मी भी इबोला की भेंट चढ़ चुके हैं, इसलिए ज़्यादातर स्वास्थ्यकर्मी यहाँ आना ही नहीं चाहते और जो यहाँ हैं वह भी भाग रहे हैं (जब मेडिकल विज्ञान की शिक्षा सिर्फ़ मोटी कमाई करने के लिए दी जायेगी तो इससे ज़्यादा उम्मीद ही क्या की जा सकती है!)। इसके अलावा जो इलाज केन्द्र बनाये गये हैं उनके पास इबोला का इलाज करने के लिए ज़रूरी साजोसामान भी नहीं है। एक अन्दाज़ के मुताबिक़ इबोला को कण्ट्रोल करने के लिए अगले छह महीनों में 100 करोड़ डॉलर की ज़रूरत है। अमेरिका ने सहायता के नाम पर अभी एक करोड़ डॉलर ही दिये हैं जबकि वह इराक-सीरिया में बम गिराने के लिए

(पेज 14 पर जारी)

लुधियाना के टेक्सटाइल मजदूरों के संघर्ष की शानदार जीत

टेक्सटाइल होजरी कामगार यूनियन के नेतृत्व में लुधियाना के लगभग 50 पावरलूम कारखानों के मजदूरों का संघर्ष इस वर्ष 8 से 12 प्रतिशत वेतन/पीस रेट बढ़ोत्तरी और बोनस लेने का समझौता करवाकर जीत से समाप्त हुआ। पिछले पाँच वर्षों से पावरलूम मजदूरों ने संघर्ष करते हुए अब तक वेतन/पीस रेटों में 63 प्रतिशत तक की बढ़ोत्तरी करवाई है, ज्यादातर कारखानों में ईएसआई कार्ड बनाने के लिए मालिकों को मजबूर किया और पिछले तीन वर्षों से मालिकों की बोनस देने के लिए भी मजबूर किया है।

लुधियाना में ज्यादातर पावरलूम मजदूर छोटे-छोटे कारखानों में काम करते हैं। लगभग 15 मुहल्लों में पावरलूम के कारखाने लगे हुए हैं। उनमें से शक्तिनगर, टिब्बा रोड, मेहरबान, कश्मीरनगर, माधोपुरी और गऊशाला में टेक्सटाइल होजरी कामगार यूनियन के नेतृत्व में मजदूर संगठित हैं।

इन कारखानों में कोई भी मालिक श्रम क़ानून लागू नहीं करता। ज्यादातर छोटे मालिक हैं। कुछ मालिकों ने अपने कारखाने अलग-अलग मुहल्लों में लगाये हुए हैं। जब कभी मजदूर अपने माँगों के लिए हड़ताल करते हैं तो उसमें छोटे मालिक समझौते के लिए जल्दी तैयार हो जाते हैं लेकिन बड़े मालिकों के कारखाने दूसरे इलाकों में चलने के कारण वह जल्दी फैसला नहीं लेते हैं और हड़ताल लम्बा हो जाता है। 2011 में

70 दिन लम्बी हड़ताल के बाद अलग-अलग कारखानों के मजदूरों ने अपने-अपने मालिकों से समझौते कर यूनियन कमेटी द्वारा तय फैसले लागू करवाये थे। तब से अब तक ऐसे ही यूनियन कमेटी द्वारा तय माँग-पत्रक पर समझौते करके पावरलूम मजदूर मालिकों को फैसले लेने के लिए मजबूर कर रहे हैं।

पावरलूम मजदूरों का संगठित संघर्ष मालिकों के लिए सिरदर्दी बना हुआ है। उन्होंने संगठन तोड़ने के लिए बहुत सारे हथकंडे अपनायें। संगठन के नेतृत्व के बारे में तरह-तरह की अफवाहें फैलायीं, लेकिन संघर्ष चलने के जनवादी तरीके कारण मजदूरों का विश्वास नेतृत्व पर बना रहा। संगठन तोड़ने के लिए मालिकों ने अगुआ मजदूरों के काम से निकाला लेकिन हर वर्ष उन कारखानों के मजदूरों ने अपने अधिकार के संघर्ष को जारी रखा। इस बार भी मालिक हाथ पर हाथ धारकर नहीं बैठेंगे। वह लगातार चालें चल रहे हैं। किये हुए समझौतों से मुकरने के बहाने ढूँढ़ रहे हैं। इसलिए मालिकों की इन घटिया चालों के खिलाफ सभी मजदूरों को अपने-अपने कारखानों में संगठन की हिफाजत करनी होगी।

पिछले वर्ष की तरह इस वर्ष भी कुछ समस्याएँ बनी हुई हैं। जैसे संगठन का अन्य मुहल्लों में ना फैलना जिससे मालिकों व प्रशासन के ऊपर ज्यादा दबाव बनाकर लंबित माँगें नहीं मनवाई जा सकती हैं। औरतों की भागीदारी इस बार के संघर्ष में भी मामूली रही हैं। मजदूर अपने परिवारां को संघर्ष में शामिल करके मालिकों व श्रम विभाग पर ज्यादा दबाव बना सकते हैं। इस बार भी संगठन के प्रचार कार्यों में ढिलाई रही। सक्रिय कार्यकर्ताओं की संगठन में कमी है जिस कारण ज्यादा बड़े पैमाने पर प्रचार संगठित नहीं हो पा रहा है और हड़ताल का फैलाव भी सीमित रहता है। संगठन भी 2012 से उसी इलाके में सिमटा हुआ है जबकि मालिक लुधियाना की एकता बना चुके हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मजदूरों के संगठन को और मजबूत और फैलाने के लिए उपरोक्त समस्याओं को दूर करना होगा तभी मालिकों के संगठित हमले का मुकाबला किया जा सकता है।

– बिगुल संवाददाता

देखो देखो!

देखो-देखो गाय कट रही है
हमारे हिंदू धर्म का अपमान हो रहा है
गाय काटने वाले, मुसलमान ही होंगे
वे हमारी गाय काट रहे हैं
चलो हम उनको काटते हैं।
देखो-देखो वहाँ शादी हो रही है
हिंदू लड़का हमारी मुस्लिम लड़की से शादी कर रहा है
ये तो हमारा धर्म भ्रष्ट कर रहा है
इससे पहले कि ये हमारा धर्म भ्रष्ट करें
चलो हम इन्हें नष्ट कर देते हैं।
देखो-देखो वहाँ दंगे हो रहे हैं,
हिंदू-मुस्लिम एक-दूसरे की जान लेने पर तुले हैं
पर ये लड़ किसलिए रहे हैं
ये तो शायद ये भी नहीं जानते।
देखो-देखो वहाँ दंगे खत्म हो गये
नेता लोग वहाँ आये हैं
और कहते हैं
हमें वोट दो, हम आपकी जिंदगी सुधारेंगे
कितने अच्छे नेता लोग हैं ये
हर साल दंगों की बारिश के बाद
ये अपनी वोट की फसल काटने आते हैं।
देखो-देखो मालिक मजदूरों की मेहनत को चुरा रहा है
उसने तो ये देखा ही नहीं
ये मजदूर हिंदू है या मुसलमान
उसको क्या है
उसको तो खून चूसने से मतलब है।
देखो-देखो फैक्टरियों में हड़ताल हो रही है,
जो हक मालिक द्वारा मारे गये
उन हकों को उससे छीनने के लिए
मजदूर हड़ताल पर बैठे हैं
पर यहाँ एक आश्चर्य की बात है
इसमें न तो कोई हिंदू है
और नही सिख या मुस्लिम
यहाँ सबका एक ही धर्म है
वो है मेहनतकशों का धर्म
देखो-देखो
मजदूर जाग रहे हैं...

– भारत, सूरज पार्क, बादली, दिल्ली

3 तेल कम्पनियों को "नुक़सान" पूर्ति के लिए 11 हज़ार करोड़ की सरकारी मदद

भारत सरकार ने देश की तीन प्रमुख तेल कम्पनियों को "नुक़सान" पूर्ति के लिए चालू वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही (अप्रैल से जून) में 11000 करोड़ रुपये बाँटे हैं। इन में से 6,076 करोड़ रुपये इण्डियन ऑयल निगम को, 2407 करोड़ रुपये भारत पेट्रोलियम निगम को और 2517 करोड़ रुपये हिन्दोस्तान पेट्रोलियम निगम को दिये गये हैं। अख़बारी ख़बरों में कहा जा रहा है कि यह राशि तेल कम्पनियों के नुक़सान की पूर्ति के लिए दी जा रही है। ख़बरों के मुताबिक़ इन कम्पनियों को अप्रैल से जून तक के तीन माह में पेट्रोलियम पदार्थों की बिक्री में 28,690 करोड़ रुपये का घाटा पड़ा है। इस घाटे की पूर्ति के लिए एक तो इन तेल कम्पनियों को गैस कम्पनियों की तरफ़ से गैस सस्ती मुहैया करवाई जाती है और बाक़ी घाटा सरकार की तरफ़ से पूरा किया जाता है। गैस कम्पनियों की तरफ़ से 15,500 करोड़ से अधिक की छूट दी गयी है और 11000 करोड़ रुपये सरकार दे रही है, इसके बाद भी इन कम्पनियों को 2500 करोड़ रुपये के करीब नुक़सान हो रहा है।

किसी को भी यह लग सकता है कि जनता को पेट्रोलियम उत्पाद सस्ते देने के कारण हुए नुक़सान की पूर्ति के लिए सरकार की तरफ़ से सब्सिडी देना किसी भी तरह से ग़लत नहीं है। लेकिन वास्तव में "घाटा पूर्ति" शब्द जनता को भरमाने का एक शब्द-जाल है। होता यह है कि हर कम्पनी अपने पिछले कारोबार के चक्र के आधार पर मुनाफ़ों का एक लक्ष्य तय करती है और एक चक्र पूरा होने पर जब हिसाब किया जाता है तो जिस चीज़ को वह "नुक़सान" कहते हैं उसका मतलब यह नहीं होता कि उस कम्पनी ने अपने उत्पाद उनकी लागत से कम पर बेचे हैं, बल्कि इसका मतलब यह होता है कि कम्पनी को मुनाफ़ा तो हुआ है लेकिन उतना नहीं जितना वह कमाना चाहती थी और इस पहले से तय लाभ और असली लाभ केबीच के फ़र्क़ को वह "घाटे" का नाम देती है। मिसाल के तौर पर एक कम्पनी 100 करोड़ रुपये निवेश करके 500 करोड़ कमाने का लक्ष्य रखती है, चक्र पूरा होने के बाद उसकी कुल आमदनी 400 करोड़ बनती है तो यह नहीं कहा जाता कि कम्पनी को 300 करोड़ का मुनाफ़ा हुआ बल्कि यह कहा जाता है कि कम्पनी को 100 करोड़ का घाटा पड़ा। यही कुछ तेल कम्पनियों के मामलों में होता है। पहले तो यह तेल कम्पनियाँ जनता की अच्छी तरह से खाल उधेड़कर मोटे मुनाफ़े बटोरती हैं और बाद में सरकार आम जनता से टैक्स के रूप में वसूले पैसे इन कम्पनियों को "घाटा पूर्ति" के नाम पर लुटा देती है। फिर इस भारी 'सब्सिडी' की दुहाई देकर तेल और गैस की कीमतें बढ़ाने का खेल शुरू हो जाता है।

फिलहाल तेल की कीमतों में मामूली कटौती से जनता को ज़्यादा ख़ुश होने की ज़रूरत नहीं। अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल की कीमत में भारी कमी का थोड़ा सा फ़ायदा जो अभी मिल रहा है वह कच्चे तेल के दाम बढ़ते ही काफ़ूर हो जायेगा।

जहाँ 3 कम्पनियों को तीन महीनों में ही 11 हज़ार करोड़ रुपये बाँटे गये हैं, वहीं सरकार दूसरी तरफ़ देश की करोड़ों कामगार जनता, नौजवानों और बच्चों के रहन-सहन, खान-पान, सेहत, शिक्षा और रोज़गार जैसी सहूलियतें देने से हाथ खिंचती जा रही है। देश के 33 करोड़ लोग भूखे सोते हैं, 60 प्रतिशत से अधिक जनता को पीने के लिए साफ़ पानी उपलब्ध नहीं,सरकारी स्कूलों, अस्पतालों की हालत दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही है और यह भी पूँजीपतियों की लूट के अड्डे बन रहे हैं, करोड़ों बच्चे स्कूल जाने की जगह बाल-मज़दूरी करने पर मजबूर हैं और करोड़ों नौजवान हाथ में डिग्रियाँ लेकर रोज़गार की खोज में भटकते फिरते हैं।

इन दोगली नीतियाँ से साफ़ है कि ये सरकारें तो मुट्ठीभर पूँजीपतियों के हाथों में खेलती कठपुतलियाँ हैं जो जनता को लूटने, पीटने और भरमाए रखने के लिए इस्तेमाल की जाती हैं। जनता के हाथ में वोटों की पर्ची थमाकर उनसे सरकार "चुनने" का ढोंग करके उन्हें भ्रमित किया जाता है और पूँजीपति मोटे मुनाफ़े काटते हैं। ऐसे राजनैतिक ढाँचे और ऐसी सरकारों से जनता की भलाई की कोई उम्मीद नहीं रखी जा सकती।

– रौशन

धार्मिक बँटवारे की साज़िशों को नाकाम करो! पूँजीवादी लूट के ख़िलाफ़ एकता क़ायम करो!

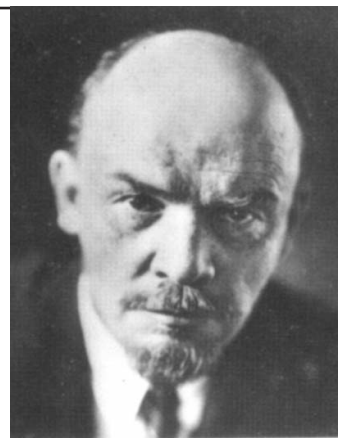

"प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग ने अपने आप को हर जगह धार्मिक झगड़ों को उभाड़ने के दुष्कृत्यों में संलग्न किया है, और वह रूस में भी ऐसा करने जा रहा है–इसमें उसका उद्देश्य आम जनता का ध्यान वास्तविक महत्व की और बुनियादी आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं से हटाना है जिन्हें अब समस्त रूस का सर्वहारा वर्ग क्रान्तिकारी संघर्ष में एकजुट हो कर व्यावहारिक रूप से हल कर रहा है। सर्वहारा की शक्तियों को बाँटने की यह प्रतिक्रियावादी नीति, जो आज ब्लैक हंड्रेड (राजतंत्र समर्थक गिरोहों) द्वारा किये हत्याकाण्डों में मुख्य रूप से प्रकट हुई है, भविष्य में और परिष्कृत रूप ग्रहण कर सकती हैं। हम इसका विरोध हर हालत में शान्तिपूर्वक, अडिगता और धैर्य के साथ सर्वहारा एकजुटता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की शिक्षा द्वारा करेंगे–एक ऐसी शिक्षा द्वारा करेंगे जिसमें किसी भी प्रकार के महत्वहीन मतभेदों के लिए कोई स्थान नहीं है। क्रान्तिकारी सर्वहारा, जहाँ तक राज्य का संबंध है, धर्म को वास्तव में एक व्यक्तिगत मामला बनाने में सफल होगा। और इस राजनीतिक प्रणाली में, जिसमें मध्यकालीन सड़न साफ हो चुकी होगी, सर्वहारा आर्थिक गुलामी के, जो कि मानव जाति के धार्मिक शोषण का वास्तविक स्रोत है, उन्मूलन के लिए सर्वहारा वर्ग व्यापक और खुला संघर्ष चलायेगा।"

– लेनिन

(समाजवाद और धर्म)

"आधुनिक पूँजीवादी देशों में धर्म की ये जड़ें मुख्यत: सामाजिक हैं। आज धर्म की सबसे गहरी जड़ मेहनतकश अवाम की सामाजिक रूप से पददलित स्थिति और पूँजीवाद की अन्धी शक्तियों के समक्ष उसकी प्रकटत: पूर्ण असहाय स्थिति है, जो हर रोज़ और हर घण्टे सामान्य मेहनतकश जनता को सर्वाधिक भयंकर कष्टों और सर्वाधिक असभ्य अत्याचारों से संत्रस्त करती है, और ये कष्ट और अत्याचार असामान्य घटनाओं–जैसे युद्धों, भूचालों, आदि–से उत्पन्न कष्टों से हज़ारों गुना अधिक कठोर हैं। "भय ने देवताओं को जन्म दिया।" पूँजी की अन्धी शक्तियों का भय–अन्धी इसलिए कि उन्हें सर्वसाधारण अवाम सामान्यत: देख नहीं पाता–एक ऐसी शक्ति है जो सर्वहारा वर्ग और छोटे मालिकों की ज़िन्दगी में हर क़दम पर "अचानक", "अप्रत्याशित", "आकस्मिक", तबाही, बरबादी, गरीबी, वेश्यावृत्ति, भूख से मृत्यु का ख़तरा ही नहीं उत्पन्न करती, बल्कि इनसे अभिशप्त भी करती है। ऐसा है आधुनिक धर्म का मूल जिसे प्रत्येक भौतिकवादी को सबसे पहले ध्यान में रखना चाहिए, यदि वह बच्चों के स्कूल का भौतिकवादी नहीं बना रहना चाहता। जनता के दिमाग से, जो कठोर पूँजीवादी श्रम द्वारा दबी-पिसी रहती है और जो पूँजीवाद की अन्धी विनाश- कारी शक्तियों की दया पर आश्रित रहती है, शिक्षा देने वाली कोई भी किताब धर्म का प्रभाव तब तक नहीं मिटा सकती, जब तक कि जनता धर्म के इस मूल से स्वयं संघर्ष करना, पूँजी के शासन के सभी रूपों के ख़िलाफ़ ऐक्यबद्ध, संगठित, सुनियोजित और सचेत ढंग से संघर्ष करना नहीं सीख लेती।"

– लेनिन

(धर्म के प्रति मज़दूरों की पार्टी का रुख)

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

– भगतसिंह

(साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज)

जब तक लोग अपनी स्वतंत्रता का इस्तेमाल करने की ज़हमत नहीं उठायेंगे, तब तक तानाशाहों का राज चलता रहेगा; क्योंकि तानाशाह सक्रिय और जोशीले होते हैं, और वे नींद में डूबे हुए लोगों को ज़ंजीरों में जकड़ने के लिए, ईश्वर, धर्म या किसी भी दूसरी चीज़ का सहारा लेने में नहीं हिचकेंगे।

– फ्रांसीसी क्रान्ति की वैचारिक नींव तैयार करने वाले महान दार्शनिकों में से एक – वोल्तेयर

एक तरफ जहाँ जन आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन हुए, वहीं, उनके साथ-साथ जातिगत और साम्प्रदायिक आन्दोलनों को भी जान-बूझकर शुरू किया गया क्योंकि ये आन्दोलन न तो अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ थे, न किसी वर्ग के, बल्कि ये दूसरी जातियों के ख़िलाफ़ थे।

– साम्प्रदायिक जुनून का मुकाबला करते हुए शहीद होने वाले महान राष्ट्रवादी पत्रकार गणेशशंकर विद्यार्थी

ये देखिये, मोदी के गुरुजी के विचार क्या थे...

"हिन्दुओ, ब्रिटिश से लड़ने में अपनी ताक़त बर्बाद मत करो। अपनी ताक़त हमारे भीतरी दुश्मनों यानी मुसलमानों, ईसाइयों और कम्युनिस्टों से लड़ने के लिए बचाकर रखो।"

– एम.एस. गोलवलकर

(आर.एस.एस. के दूसरे सरसंघचालक)

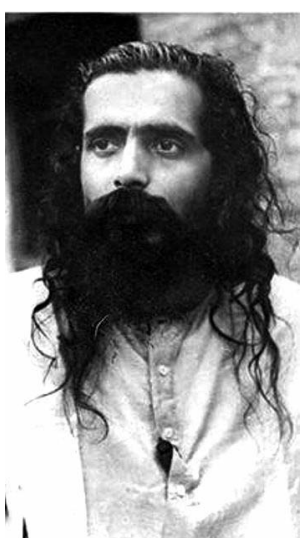

...और यह कहना था गुरुजी के गुरुदेव का!

"लोगों पर नियंत्रण करने और उन्हें पूरी तरह अपने वश में कर लेने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि उनकी आज़ादी थोड़ी-थोड़ी छीनी जाये, अधिकारों को एक हज़ार छोटी-छोटी और पता भी न चलने वाली कटौतियों से कम किया जाये। इस तरीक़े से, लोगों को इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के छिनने का पता ही नहीं चलेगा और जब उन्हें पता चलेगा तब तक इन बदलावों को वापस लौटाना नामुमकिन हो जायेगा।"

– एडोल्फ़ हिटलर

'माइन कैम्फ' (आत्मकथा) में

भारत को 'मैन्युफ़ैक्चरिंग हब' बनाने के मोदी के सपने के मायने

(पेज 7 से आगे)

की बेरोकटोक आवाजाही सुनिश्चित करने के पूरे संकेत दे दिये हैं।

अब सवाल यह उठता है कि तमाम पर्यावरणीय नियमों को ताक पर रखकर इस देश की अकूत प्राकृतिक सम्पदा और उपजाऊ ज़मीन को औने-पौने दामों पर देशी-विदेशी पूँजीपतियों को सौंपने और श्रम क़ानूनों में फेरबदल कर मज़दूरों को पूरी तरह उनके रहमो-करम पर छोड़ने के बाद जिस 'मैन्युफ़ैक्चरिंग हब' का निर्माण होगा उससे इस देश की आम मेहनतकश आबादी की ज़िन्दगी में क्या बेहतरी आयेगी? अव्वलन तो अवरचनागत क्षेत्र के कम विकास और बिजली संकट के मद्देनज़र इस बात पर भी एक बड़ा प्रश्नचिन्ह है कि भारत को 'मैन्युफ़ैक्चरिंग हब' बनाने का मोदी सरकार का सपना वास्तविकता की ज़मीन छू पायेगा अथवा नहीं। परन्तु जिस हद तक भी यह सपना पूरा होगा, इतना तो तय है कि इससे मज़दूरों की ज़िन्दगी और भी ज़्यादा नरक के समान होती जायेगी। इसकी झलक हमें मौजूदा मैन्युफ़ैक्चरिंग हबों में मज़दूरों की स्थिति से मिल सकती है। मिसाल के तौर पर चीन के इलेक्ट्रॉनिक्स एवं मोबाइल फ़ोन मैन्युफ़ैक्चरिंग हब को ही ले लें। सैमसंग और एप्पल जैसी दुनिया की सबसे बड़ी मोबाइल फ़ोन कम्पनियों की मोबाइल फ़ोन की मैन्युफ़ैक्चरिंग चीन में होती है। एप्पल के आईफ़ोन और आईपैड जैसे प्रोडक्ट चीन की फॉक्सकॉन जैसी कम्पनियों में बनते हैं। फॉक्सकॉन में मज़दूरों को दिन में 10-11 घण्टे खड़े होकर काम करना पड़ता है और सप्ताह में औसतन उन्हें 66-70 घण्टे काम करना पड़ता है। यहाँ तक कि गर्भवती महिलाओं के साथ भी कोई रियायत नहीं बरती जाती और उन्हें अन्य मज़दूरों जितना ही काम करना पड़ता है। यही नहीं उन्हें आये दिन सुपरवाइज़र की गालियाँ सुनने को मिलती हैं। उन्हें समय से तनख़्वाह भी नहीं मिलती तथा छुट्टी बहुत मुश्किल से मिलती है। उन्हें बेहद गन्दी डार्मिटरी में रहना पड़ता है जिसमें छोटे से कमरे में 8-10 मज़दूर एक साथ रहने के लिए मजबूर किये जाते हैं। ऐसे नारकीय हालात से तंग आकर उनमें से तमाम मज़दूर मानसिक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। यही नहीं पिछले कुछ वर्षों में फॉक्सकॉन के कई मज़दूरों द्वारा काम करने की अमानवीय परिस्थितियों से तंग आकर आत्महत्या के कई मामले अन्तरराष्ट्रीय मीडिया की सुर्खियों में छाये रहे। अपनी छवि को सुधारने के लिए एप्पल ने हाल ही में आईफ़ोन और आईपैड की मैन्युफ़ैक्चरिंग चीन की ही एक अन्य कम्पनी पेगाट्रान को स्थानान्तरित की है। परन्तु चाइना लेबर वाच नामक एक संस्था द्वारा प्रकाशित एक हालिया रिपोर्ट के मुताबिक पेगाट्रान में भी फॉक्सकॉन की ही तर्ज़ पर मज़दूरों से क़ानूनन तय काम के घण्टों से अधिक काम लिया जाता है और बदले में उन्हें पर्याप्त मज़दूरी भी नहीं दी जाती। यही नहीं फॉक्सकॉन की ही तरह पेगाट्रान में भी बड़े पैमाने पर नाबालिगों एवं बच्चों से काम करवाया जाता है। यही हालात चीन की एक अन्य कम्पनी सामक्वांग में काम कर रहे मज़दूरों की है जिसमें सैमसंग के मोबाइल बनते हैं। इस कम्पनी में भी बड़े पैमाने पर छात्र प्रशिक्षुओं से लम्बे समय तक काम कराया जाता है। छोटी-छोटी ग़लतियों पर मज़दूरों को सुपरवाइज़रों और मैनेजरों की गालियाँ सुननी पड़ती हैं और उनसे ज़बरन आत्मालोचना लिखवाकर उन्हें अपमानित किया जाता है। इस कम्पनी में भी मज़दूरों को यूनियन बनाने की कोई आज़ादी नहीं है।

इलेक्ट्रॉनिक्स के अतिरिक्त चीन में खिलौनों की विशाल पैमाने पर मैन्युफ़ैक्चरिंग होती है। अमेरिका में मिलने वाले अधिकांश खिलौने चीन की फैक्ट्रियों में बनते हैं। अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी मैटेल (बार्बी डॉल जैसे ब्राण्ड की मालिक) अपने खिलौने चीन की 100 से भी ज़्यादा खिलौने बनाने वाली कम्पनियों में बनवाती है। इन कम्पनियों में मज़दूरों को 10-13 घण्टे खड़े होकर काम करना पड़ता है। ख़तरनाक रसायनों के बीच काम करने के बावजूद इन कम्पनियों के मज़दूरों को सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं होती है। अन्य कम्पनियों की तरह इस कम्पनी में भी समय पर मज़दूरी नहीं मिलती।

कमोबेश ऐसे ही हालात मलेशिया, इण्डोनेशिया और वियतनाम के इलेक्ट्रानिक मैन्युफ़ैक्चरिंग हबों के हैं जहाँ मज़दूरों को लगभग गुलामों जैसी अवस्था में काम करवाया जाता है। बांग्लादेश के टेक्सटाइल्स मैन्युफ़ैक्चरिंग हब की हालत भी इससे अलग नहीं है। पिछले साल राणा प्लाज़ा इमारत के ढहने से 1100 से भी ज़्यादा मज़दूरों की मौत ने इस हब की असलियत उजागर कर दी थी कि किस तरह से पश्चिमी जगत की नामी-गिरामी कपड़ा कम्पनियाँ तीसरी दुनिया के मज़दूरों की ज़िन्दगी को ताक पर रखकर अपना मुनाफ़ा बढ़ा रही हैं। हमारे अपने ही देश में तिरूपुर, बंगलूरू और गुड़गाँव के टेक्सटाइल्स मैन्युफ़ैक्चरिंग हब में मज़दूरों के हालात नारकीय हैं। ऑटोमोबाइल सेक्टर की बात करें तो गुड़गाँव जैसे ऑटोमोबाइल्स मैन्युफ़ैक्चरिंग हब में मज़दूर किन परिस्थितियों में काम करते हैं यह मारूति प्रकरण के ज़रिये सबके सामने आ चुका है।

इन सबके बावजूद भी यदि कोई यह उम्मीद बाँधकर बैठा है कि भारत एक दिन मैन्युफ़ैक्चरिंग हब बनेगा और मज़दूरों के हालात में बेहतरी आयेगी तो इसे ख़ामख़्याली ही कहा जायेगा। हक़ीकत यह है कि जब तक पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध क़ायम हैं तब तक कितने भी मैन्युफ़ैक्चरिंग हब बना लिये जायें, वे मज़दूरों को गन्ने और तिलहन की तरह पेरकर और उनकी हड्डियाँ निचोड़कर पूँजीपतियों के मुनाफ़े को बढ़ाने के ही काम आयेंगे और पूँजीपतियों का मुनाफ़ा मज़दूरों को ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़कर ही बढ़ेगा। इसलिए मज़दूरों को पूँजीपतियों और उनकी नुमाइन्दगी करने वाली सरकारों से कुछ उम्मीद पालने की बजाय अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं खोजना होगा।

●

इबोला - महामारी या महाक़त्ल?

(पेज 11 से आगे)

खरबों डॉलर ख़र्च कर चुका है और रोज़ कर रहा है। 'ऐफ्रीकोम' ने सिर्फ़ इलाज-केन्द्र बनाकर देने की पेशकश की है, इलाज के लिए डॉक्टर, नर्सिंग स्टाफ़ तथा अन्य कर्मी भेजने की अमेरिका की कोई योजना नहीं है। विश्व स्वास्थ्य संगठन हमेशा की तरह सहायता के लिए चिट्ठी-पत्र भेजने तथा चेतावनियाँ जारी करने की कवायद में जुटा है। वैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन की विश्व पूँजीवादी व्यवस्था में क्या औक़ात है, इसके बारे में थोड़ा भी जानने-समझने वाले व्यक्ति को कोई भ्रम भी नहीं है।

यहाँ पर चिकित्सा अनुसन्धान कार्यों के बारे में भी कुछ बात कर लेनी अनावश्यक नहीं होगा। मज़दूरों के महान शिक्षक फ्रेडरिक एंगेल्स ने 1844 में लिखी अपनी किताब 'इंग्लैण्ड में मज़दूर वर्ग की हालत' में लिखा है कि ग़रीबों की बस्तियों में सफ़ाई अभियान तब शुरू होता है जब वहाँ पर फैली गन्दगी से पैदा होने वाली बीमारियों का अमीरों के इलाक़ों में फैलने का ख़तरा खड़ा हो जाता है। यह बात आज के मेडिकल 'अनुसन्धान' पर अक्षरत: फिट बैठती है। 1976 में इबोला वायरस के पता चलने से लेकर अब तक, इस बीमारी के लिए वैक्सीन बनाने या दवा खोजने का काम कोल्ड-स्टोरेज में पड़ा रहा है क्योंकि इबोला अब तक ग़रीब अफ़्रीकी देशों की बीमारी थी! ग़रीबों को होने वाली बीमारियों के इलाज के लिए आज के मेडिकल अनुसन्धान को तब तक कोई दिलचस्पी नहीं होती है, जब तक कि वह अमीरों के लिए कोई ख़तरा नहीं बनतीं। आज का मेडिकल अनुसन्धान पूरी तरह दवा-कम्पनियों के कब्ज़े में है इसलिए अनुसंधान उन बीमारियों के लिए होते हैं जिनके लिए दवा खोजने से बड़ा मुनाफ़ा होने की सम्भावना हो, यानी इसके ग्राहक अमीर तथा उच्च-मध्यवर्ग के लोग ही हैं। डायबिटीज़, उच्च रक्तचाप तथा दिल की बीमारियाँ जो मुख्यत: पूँजीपतियों और उनके टुकड़ों पर पलने वाले आरामपरस्त परजीवी लोगों को होती हैं, उनके लिए पहले ही अच्छी-खासी दवाएँ होने के बावजूद अरबों-खरबों डॉलर 'अनुसन्धान' पर लुटाये जा रहे हैं जबकि बहुसंख्यक मेहनतकश, मज़दूर आबादी के लिए नयी दवाएँ खोजना तो दूर, आधी सदी पहले से खोजे जा चुके इलाज तथा बीमारियों को रोकने के लिए जानकारी पहुँचाने के लिए फूटी-कौड़ी ख़र्च नहीं की जाती।

कुल मिलाकर कहा जाये तो इबोला कोई महामारी नहीं है, यह तो शोषण पर टिके पूँजीवादी ढाँचे द्वारा मुनाफ़े के लिए किया जा रहा एक और ठण्डा क़त्लेआम है। इस बीमारी के फैलने का असली कारण पूँजीवादी लूट है और ऊपर से इसी पूँजीवादी ढाँचे के कारण बीमारी की चपेट में आने वाले लोगों को बचाना सम्भव नहीं हो पा रहा, उल्टा यह ढाँचा इस बीमारी को फैलने में मदद कर रहा है। स्वास्थ्य विज्ञान का विकास बेशक बीमारियों को कण्ट्रोल करने में अहम है, लेकिन सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक बदलाव (यानी पूँजीवाद को उखाड़कर समाजवाद की स्थापना) उससे भी ज़्यादा अहम है तथा आज स्वास्थ्य विज्ञान के अब तक हो चुके विकास का फ़ायदा पूरी मानवता तक पहुँचाने तथा इस विज्ञान के आगे और विकास के लिए यह बदलाव एक पूर्व-शर्त बन चुका है। इबोला से जुड़ा पूरा घटनाक्रम एक बार फिर से इसको साफ़-साफ़ दिखा रहा है। आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान के एक बहुत बड़े नाम रॉबर्ट विर्चो ने 1847 में अपने एक शोध निबन्ध में लिखा है - 'स्वास्थ्य विज्ञान एक समाज विज्ञान है और राजनीति बड़े पैमाने पर स्वास्थ्य विज्ञान है।' उस महान वैज्ञानिक ने डेढ़ सदी पहले यह देख लिया था कि अगर स्वास्थ्य विज्ञान का फ़ायदा समूची मानवता को पहुँचाना है तो इसका समाज के नियंत्रण में होना ज़रूरी है। उनके इन विचारों को रूस की अक्टूबर क्रान्ति तथा चीन की 1949 की क्रन्ति ने सच करके दिखाया तथा कितनी ही महामारियों को धरती से चलता कर दिया था। मज़दूर क्रान्तियों की इस गौरवशाली विरासत को न सिर्फ़ ख़ुद मज़दूरों तक लेकर जाना बल्कि जन-जन तक लेकर जाना और सबसे अहम स्वास्थ्य क्षेत्र के लोगों तक लेकर जाना आज आवश्यक हो गया है।

●

हरियाणा चुनाव...

(पेज 5 से आगे)

रक्षा जैसे नाजुक क्षेत्रों में 49 से 100 फ़ीसदी तक एफ़डीआई लेकर आयी है। अपनी चुनावी रैलियों में भाजपा के 'दिग्गज' 100 दिनों के अन्दर काला धन वापस लाकर देश के हर परिवार को 15 लाख रुपये देने की बात करते नहीं थकते थे, लेकिन अब 150 दिन बाद भी काले धन के मसले पर वही पुराना स्वांग हो रहा है। रेलवे के किराये में 14 फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी कर दी गयी। पैट्रोल और डीजल से बड़े ही शातिराने ढंग से सरकारी सब्सिडी हटाकर इन्हें बाज़ार की अन्धी ताक़तों के हवाले कर दिया गया। सितम्बर 2014 में जीवनरक्षक दवाओं को मूल्य नियन्त्रण के दायरे में लाने वाले फ़ैसले पर रोक लगा दी है जिससे इनके दामों में भरी बढ़ोत्तरी हुई है। 'श्रमेव जयते' का शिगुफा उछालने वाली भाजपा सरकार मज़दूर आबादी के रहे-सहे श्रम क़ानून छीनने पर आमादा है। 31 जुलाई को फ़ैक्टरी एक्ट 1948, ट्रेड यूनियन एक्ट 1926, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1948, ठेका मज़दूरी क़ानून 1971, एप्रेण्टिस एक्ट 1961 जैसे तमाम श्रम क़ानूनों को "लचीला" बनाने के नाम पर कमजोर करने की कवायद शुरू कर दी है। मतलब अब क़ानूनी तौर पर भी मज़दूरों की लूट पर कोई रोक नहीं होगी। चाहे करनाल का लिबर्टी फ़ैक्टरी का मसला हो, एनसीआर में होने वाले होण्डा, रिको और मारुति सुजुकी मज़दूरों के आन्दोलनों को कुचलने की बात हो कांग्रेस ने मालिकों का पक्ष लिया। हरियाणा की मज़दूर आबादी के हक़-अधिकारों को कुचलने के मामले में भाजपा हर तरह से कांग्रेस से इक्कीस ही पड़ने वाली है। जापान यात्रा में मोदी की मालिक भक्ति जग-ज़ाहिर हो गयी जब जापानी पूँजीपतियों की सेवा में 'जापानी प्लस' नाम से एक नया प्रकोष्ठ खोलने का ऐलान हुआ। जापानी प्रबन्धन जिस तरह से मज़दूरों का ख़ून निचोड़ता है इसे ऑटो-मोबाइल उद्योग के मज़दूर भली प्रकार से जानते हैं।

वैसे तो पूँजीवादी व्यवस्था में हर चुनावी पार्टी पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी बनने के लिए तैयार रहती है, किन्तु आज मन्दी के दौर में भाजपा जैसी पार्टी पूँजीपतियों की पहली पसन्द होती है जो लोगों को असली मुद्दों से भटकाकर धर्म-नस्ल के आधार पर बाँट सके और डण्डे के दम पर जनान्दोलनों को कुचल सके। लेकिन यह भी ऐतिहासिक सच्चाई है कि जब-जब जुल्म बढ़ा है तब-तब उसका प्रतिरोध भी मुखर हुआ है। आने वाले समय में देश की जनता के सामने यह अधिकाधिक साफ़ होता जायेगा कि साँपनाथ के जाने और नागनाथ के आने से समस्याओं का काई समाधान नहीं होने वाला। देश के मज़दूरों, ग़रीब किसानों और आम कर्मचारियों को अपनी कमर कस लेनी होगी। संगठित प्रतिरोध ही किसी भी सरकार, चाहे वह केन्द्र या राज्य कहीं भी हो, की जनविरोधी नीतियों का एकमात्र माकूल जवाब हो सकता है। इसी से अपने हक़-अधिकारों पर हमले करने वाली सरकार के क़दम पीछे हटाये जा सकते हैं।

ऑटो मज़दूर का गीत

क्या तुमने किया कभी उस लाइन पर काम
जिसमें झोंके जाते हैं हर रोज़ पाँच हज़ार शरीर?
तो फिर, मेरे भाई, तुमने कभी नहीं जाना
होता क्या है जहन्नुम;
चीख़ता है भोंपू और चालू हो जाती है लाइन
झुको, उठाओ, मारो हथौड़ा, कसो पेंच
और अब रुकना नहीं जब तक न आये दोपहर
या फिर, जब तक कि तुम गिर न पड़ो।
झुको, उठाओ, मारो हथौड़ा, कसो पेंच,
और बहता रहता है पसीना, भरता है मुँह, भरती हैं आँखें
जब तक कि न सूज जायें होंठ पसीने के नमक से
भीगी लटें बरबस गिरती हैं आँखों पर
पर फ़ुरसत कहाँ कि फेर सको उन्हें वापस अपनी जगह
लहसुनी गन्ध में, उलटने लगती हैं तुम्हारी अँतड़ियाँ,
मितलाती उन्हें मानव शरीरों की तीखी गन्ध,
मितलाता है वह जब लोग थूकते हैं खैनी का रस,
और ख़ून!
झुको, उठाओ, मारो हथौड़ा कसो पेंच
उत्पादन बढ़ाओ, लगायी जाती है हाँक
जवाब देती है अब टूटने की कगार पर पहुँची कमर,
पर, न कर सकते सीधा उसे, न ले सकते अँगड़ाई
निर्मम लाइन तुम पर शरीरों का दबाव डालती जाती है
और कुछ नहीं कर सकते तुम उन्हें रोकने के लिए
झुको, उठाओ, मारो हथौड़ा, कसो पेंच
हे भगवान! कहाँ है वह भोंपू,
झुको, उठाओ, मारो हथौड़ा, कसो पेंच
और चार घण्टे बाद खाने के लिए मिलेंगे सिर्फ़ पन्द्रह मिनट
ठूँसो सारी रोटियाँ एक साथ
और फिर से
झुको, उठाओ, मारो हथौड़ा, कसो पेंच
क्या तुमने किया कभी उस लाइन पर काम
जिसमें झोंके जाते हैं हर रोज़ पाँच हज़ार शरीर?
तो फिर, मेरे भाई, तुमने कभी नहीं जाना
होता क्या है जहन्नुम!

– राल्फ़ मार्लेट

(अमेरिका में 'युनाइटेड ऑटो वर्कर' नामक पत्रिका में 1930 के दशक में प्रकाशित)

अक्टूबर क्रान्ति(7 नवम्बर 1917) की वर्षगाँठ पर

पहली जंग के दौरान
इटली की सानकार्लो जेल की एक अन्धी कोठरी में
ठूँस दिया गया एक मुक्तियोद्धा को भी
शराबियों, चोरों और उचक्कों के साथ।
ख़ाली वक़्त में वह दीवार पर पेंसिल घिसता रहा
लिखता रहा हर्फ़-ब-हर्फ़–
लेनिन ज़िन्दाबाद!

ऊपरी हिस्से में दीवार के
अँधेरा होने की वजह से
नामुमकिन था कुछ भी देख पाना
तब भी चमक रहे थे अक्षर–बड़े-बड़े और सुडौल।
जेल के अफ़सरान ने देखा
तो फ़ौरन एक पुताईवाले को बुलवा
बाल्टी-भर क़लई से पुतवा दी वह ख़तरनाक इबारत।
मगर सफ़ेदी चूँकि अक्षरों के ऊपर ही पोती गई थी
इस बार दीवार पर चमक उठे सफ़ेद अक्षर:
लेनिन ज़िन्दाबाद!

तब एक और पुताईवाला लाया गया।
बहुत मोटे बुरुश से, पूरी दीवार को
इस बार सुर्ख़ी से वह पोतता रहा बार-बार
जब तक कि नीचे के अक्षर पूरी तरह छिप नहीं गये।
मगर अगली सुबह
दीवार से सूखते ही, नीचे से फूट पड़े सुर्ख़ अक्षर–
लेनिन ज़िन्दाबाद!

तब जेल के अफ़सरान ने भेजा एक राजमिस्त्री।
घण्टे-भर तक वह उस पूरी इबारत को
करनी से खुरचता रहा सधे हाथों।
लेकिन काम के पूरे होते ही
कोठरी की दीवार के ऊपरी हिस्से पर
और भी साफ़ नज़र आने लगी
बेदार बेनज़ीर इबारत–
लेनिन ज़िन्दाबाद!

तब उस मुक्तियोद्धा ने कहा,
अब तुम पूरी दीवार ही उड़ा दो!

– बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

(अनुवाद : सुरेश सलिल)

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

काले धन की कालिमा और सफ़ेद धन की सफ़ेदी एक छलावा है

काले धन का मुद्दा इन दिनों एक बार फिर सुर्ख़ियों में है। इस मुद्दे को लेकर लोकसभा चुनावों से पहले भाजपा द्वारा जो बड़े-बड़े वायदे किये गये थे, उन्हें पूरा करने से सरेआम मुकरने पर मोदी सरकार की इन दिनों ख़ूब छीछालेदर हो रही है। लोकसभा चुनाव-प्रचार के दौरान नरेन्द्र मोदी और उनके सिपहसालारों ने काला धन वापस लाने के मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के बावजूद कांग्रेस सरकार द्वारा की जा रही ढिलाई को लेकर उस पर जमकर हमला बोला था। नरेन्द्र मोदी और भाजपा के अन्य नेताओं का आरोप था कि कांग्रेस सरकार दोहरे कराधान बचाव समझौतों की आड़ में विदेशी बैंकों में काला धन रखने वालों का बचाव कर रही है। काले धन को चुनावी मुद्दा बनाते हुए नरेन्द्र मोदी ने जनता को मुँगेरी लाल के हसीन सपने दिखाये। मोदी ने यहाँ तक दावा किया कि विदेशी बैंकों में जमा 27,72,000 करोड़ रुपये काला धन जब भारत लाया जायेगा तो हर भारतीय के खाते में 3-4 लाख रुपये आ जायेंगे। योगगुरू की आड़ में भाजपा के प्रचारक की भूमिका अदा करने वाले रामदेव भी सिंह-आसन मुद्रा में काले धन को लेकर हुँकारें भरते रहे, हालाँकि अब पिछले लम्बे समय से इस मुद्दे पर मौन धारण किये हुए हैं। उस समय भाजपा दावा कर रही थी कि सत्ता में आने के 100 दिनों के भीतर ही वह काला धन रखने वालों का नाम उजागर कर देगी और उनके ख़िलाफ़ कठोर कार्रवाई करेगी। लेकिन सत्ता में आने पर मोदी सरकार ने तुरत-फुरत में जाँच एजेंसी का गठन कर पल्ला झाड़ लिया और डाबर तथा टिम्बलो जैसे दो-तीन छुटभैया पूँजीपतियों के नामों का "खुलासा" कर दिया। काले धन को लेकर जब मोदी सरकार घिरने लगी तो आख़िरकार उसने दोहरे कराधान बचाव समझौतों के उसी (कु)तर्क को अपने बचाव में इस्तेमाल किया, जिसका उपयोग कर पिछली कांग्रेस सरकार अपना असफल बचाव कर रही थी। भाजपा और कांग्रेस की काले धन को लेकर टालमटोल की नीति इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि दोनों पार्टियों के बताये अनुसार उन्हें हर साल अरबों रुपये का चन्दा अज्ञात स्रोतों से मिलता है, अब ये "अज्ञात स्रोत" कौन हैं इसका अन्दाज़ा पाठक ख़ुद-ब-ख़ुद लगा सकते हैं।

लम्बे समय से काले धन का मुद्दा चुनावी पार्टियों का चहेता मुद्दा रहा है। लोकसभा चुनाव आते ही इसे भुनाना शुरू हो जाता है। जनता को बड़े-बड़े सपने दिखाये जाते हैं। संसद के सुअरबाड़े में गत्ते की तलवारें भाँजी जाती हैं। इसी दौरान अन्ना हज़ारे, केजरीवाल और रामदेव जैसे कुछ मदारी जन्तर-मन्तर से लेकर रामलीला मैदान तक अपने रामबाण नुस्ख़ों की नुमाइश लगाते फिरते रहते हैं। फिर जैसे ही चुनाव समाप्त हो जाते हैं चुनावी राजनीति के पुराने खिलाड़ी नयी भूमिकाओं के साथ यही नौटंकी फिर से शुरू कर देते हैं। बीच-बीच में सर्वोच्च न्यायालय भी संसदीय सुअरबाड़े के रेफ़री के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने पहुँच जाता है। मज़ेदार बात यह है कि इस धींगामुश्ती से काले धन की सेहत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उल्टा वह पहले से ज़्यादा तेज़ी के साथ बढ़ने लगता है और अपनेआप को सफ़ेद धन में परिवर्तित कर देशी-विदेशी निवेश के रूप में अर्थव्यवस्था के विभिन सेक्टरों में लग जाता है। फ़्रांस सरकार द्वारा मुहैया करवाये गये 627 खातों में से कई खातों में एक भी आना-पाई का न पाया जाना इसी बात का प्रमाण है।

काले धन के बारे में फैलाये भ्रम और सच्चाई

निस्सन्देह काला धन एक गम्भीर समस्या है। लेकिन काले धन को लेकर पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक प्रतिनिधियों, अर्थशास्त्रियों, मीडिया, न्यायपालिका आदि द्वारा जनता के भीतर जो भ्रम पैठाये गये हैं, उनका पर्दाफ़ाश करना बेहद ज़रूरी है। ये सारे लोग विदेशों में जमा काले धन को ही मुख्य समस्या के रूप में पेश करते हैं और जनता में इसे वापस लाये जाने के उपरान्त ख़ुशहाल जनजीवन की नक़ली आशा पैदा करते हैं। इन भ्रमों के सम्मोहन से मुक्त होने के लिए यह बेहद ज़रूरी है कि काले धन की समस्या को गहराई से समझा जाये और काले धन और सफ़ेद धन के बीच के भ्रामक विभाजन की असलियत को जाना जाये।

सफ़ेद धन और काला धन और कुछ नहीं बल्कि पूँजीपतियों द्वारा मज़दूरों के श्रम को निचोड़ कर हासिल किये गये अतिरिक्त मूल्य का हिस्सा है। उत्पादन के दौरान उत्पादित कुल मूल्य में से मज़दूर एक छोटा सा हिस्सा मज़दूरी के रूप में पाता है और शेष मूल्य मुनाफ़े, लगान, किराया, कमीशन, टैक्स आदि के रूप में विभिन्न पूँजीपतियों और उनकी मैनेजिंग कमेटी यानी सरकार के बीच बँट जाता है। मज़दूरों के शोषण से हासिल किये गये अतिरिक्त मूल्य का वह हिस्सा जिसका हिसाब पूँजीपति सरकारी संस्थाओं को देता है सफ़ेद धन कहलाता है और वह हिस्सा जिसे वह सरकारी संस्थाओं से छुपाकर रखता है काला धन कहलाता है। मुनाफ़े की हवस में अन्धा पूँजीपति कभी भी मज़दूरों के शोषण से हासिल सफ़ेद पूँजी तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि वह पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा तय किये गये लूट के नियमों का अतिक्रमण करने के एक हज़ार एक तरीक़े अपनाता है ताकि मज़दूरों की लूट का अधिक से अधिक हिस्सा स्वयं हड़प सके। विदेशों में जमा जिस काले धन को चुनावी पार्टियों द्वारा दैत्य के रूप में पेश किया जाता रहा है, उससे कई गुना ज़्यादा काला धन तो भारत के भीतर मौजूद है। राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान की रिपोर्ट के अनुसार 1990 में उदारवादी नीतियों के लागू होने से पहले कुल सकल घरेलू उत्पाद का 30 फ़ीसदी काले धन के रूप में भारत में मौजूद था, जो अब बढ़कर 70 फ़ीसदी के करीब पहुँच चुका है। और कुल काले धन का जो हिस्सा विदेशी बैंकों में जमा भी होता है, वह भी मृत नहीं पड़ा रहता, बल्कि अधिक मुनाफ़े वाली जगह पर लगने के लिए छटपटाता रहता है और ऐसी जगह मिलते ही निवेशित हो जाता है। ज्ञात हो कि आज के समय में एफ़डीआई का लगभग 50 फ़ीसदी हिस्सा मॉरीशस रूट से भारत में दाख़िल होता है, जो दुनिया में काले धन को निवेश करने के सबसे प्रचलित रास्तों में से एक है।

अधिक से अधिक अतिरिक्त मूल्य निचोड़ने और अतिरिक्त मूल्य का अधिक से अधिक हिस्सा हड़पने के लिए पूँजीपति अनगिनत उपाय करता है। श्रम क़ानूनों को लागू न करके भी पूँजीपति अपने काले धन में वृद्धि करता है। वह मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी से कम भुगतान करता है। वह ओवरटाइम का भुगतान डबल रेट की बजाय सिंगल रेट पर करता है। वह मज़दूरों का पीएफ़ तो काट लेता है लेकिन जमा नहीं करवाता। वह उत्पादन की ख़तरनाक परिस्थितियों से बचाव हेतु मज़दूरों को दिये जाने वाले सुरक्षा उपकरणों को लाने में कोताही बरतता है। श्रम क़ानूनों के उल्लंघन के ये तमाम तरीक़े हैं जिन्हें लगभग सभी पूँजीपति अपनाते हैं। इसके अलावा पूँजीपति बैंकों से सस्ती दरों पर क़र्ज़ लेकर उत्पादन करते हैं और अपनी कम्पनी को दिवालिया घोषित करके सारा पैसा हड़प जाते हैं, यह भी काले धन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। राष्ट्रीकृत बैंकों की लगभग दो लाख करोड़ रुपये की रकम पूँजीवादी घरानों ने कर्ज़ के रूप में लेकर दबा ली है। प्राकृतिक संसाधनों की लूट, पूँजीपतियों द्वारा ज़मीनों के हथियाये जाने से लेकर, बिजली चोरी और कर चोरी जैसे और भी कई ऐसे स्रोत हैं जिनसे काला धन पैदा होता है। इसके अलावा पूँजीपति वर्ग की सेवा हेतु उनके सेवादारों - नेताओं और अफ़सरों को निर्धारित लूट के नियमों को तोड़ने-मरोड़ने के बदले में पूँजीपतियों द्वारा जो घूस और कमीशन दी जाती है, वह काले धन का एक छोटा सा हिस्सा है।

काले धन की समस्या अकेले भारत की विशिष्टता नहीं है। विश्व बैंक की 2010 की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के 162 देशों के कुल सकल घरेलू उत्पाद का औसतन 34.5 फ़ीसदी काला धन है। इन देशों में अमेरिका, फ़्रांस, जर्मनी, बेल्जियम जैसे विकसित देश भी शामिल हैं। मतलब दुनिया के तमाम देशों की अर्थव्यवस्था में बड़ी मात्रा में काले धन की मौजूदगी है। भूमण्डलीकरण के युग में पूरी दुनिया में सामाजिक-आर्थिक ग़ैरबराबरी में बेतहाशा वृद्धि हुई है। हालिया रिपोर्टों के अनुसार ग़ैरबराबरी पिछले तीन दशकों का रिकॉर्ड तोड़कर अभूतपूर्व स्तर पर जा पहुँची है। दुनिया भर के शीर्ष 85 अमीर लोगों के पास दुनिया की आधी ग़रीब आबादी के बराबर धन इकट्ठा हो गया है। दुनिया के केवल एक प्रतिशत अमीरों के पास दुनिया की आधी ग़रीब आबादी से 65 गुना अधिक धन जमा है। भारत में जहाँ 1990 में 2 अरबपति थे वहीं 2014 में इनकी संख्या 65 पहुँच चुकी है। वहीं दुनिया की एक तिहाई नितान्त ग़रीब आबादी भारत में रहती है। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि पूँजीवाद ने किस क़दर एक बड़ी आबादी को कंगाली में धकेल दिया है। इन आँकड़ों से पूँजीवादी अर्थशास्त्री और पूँजीवादी सरकारें सहमे हुए हैं। उन्हें पता है कि अगर ग़ैरबराबरी यूँ ही बढ़ती रही तो इसके नतीजे बढ़ते जनअसन्तोष के रूप में सामने आयेंगे जो इतने ताक़तवर हो सकते हैं कि इस पूँजीवादी व्यवस्था के लिए ही ख़तरा पैदा कर दें। ऐसे में पूँजीपति वर्ग काले धन को जनता के सामने ऐसे राक्षस के रूप में खड़ा करता है जो कि उनकी सभी समस्याओं का कारण है ताकि जनता पूँजीवाद के ख़िलाफ़ न खड़ी हो जाये।

मीडिया तथा राजनीतिक पार्टियों द्वारा अकसर यह शोर मचाया जाता है कि अगर विदेशी बैंकों में जमा काला धन भारत लाया जाता है तो इससे देश की ग़रीबी ख़त्म हो जायेगी और जनजीवन ख़ुशहाल हो जायेगा। वैसे तो सरकारों की मंशा को देखते हुए इस बात की कोई सम्भावना नहीं नज़र आती कि इस काले धन को भारत में लाया जा सकेगा। लेकिन यदि यह हो भी जाये तब भी यह उम्मीद करना कि इसका इस्तेमाल जनकल्याण के लिए किया जायेगा, मूर्खता ही होगी। तब भी यह पूँजीपतियों की ही सम्पत्ति बना रहेगा और पूँजीवादी तौर-तरीक़ों के अनुसार ही निवेशित होगा। काला धनधारकों को सज़ा देकर भी काले धन के सृजन की प्रक्रिया को रोका जाना असम्भव है। कुछ काला धन रखने वालों को अगर फ़ाँसी भी दे दी जाये तो काले धन के पैदा होने की प्रक्रिया वहीं पर नहीं रुक जायेगी, पूँजीवादी व्यवस्था में पैदा होने वाली सम्पत्ति लगातार काले तथा सफ़ेद धन में बँटती रहती है और यह प्रक्रिया पूँजीवाद का आन्तरिक गुण है, जिसे क़ानून बनाकर ख़त्म नहीं किया जा सकता है। सम्पत्ति की व्यवस्था के रहते, जिसमें उत्पादन के समस्त साधनों पर मुट्ठीभर लोग काबिज़ हों, राजनीतिक ढाँचे में अगर कुछ पैबन्द लगा भी दिये जायें तो जनता के जीवन में कोई बुनियादी बदलाव नहीं आयेगा।

– अखिल कुमार

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006